मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 134 ● वर्ष 14, अंक 9-10 ● दिसम्बर 2024-जनवरी 2025 (संयुक्तांक) ● दस रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

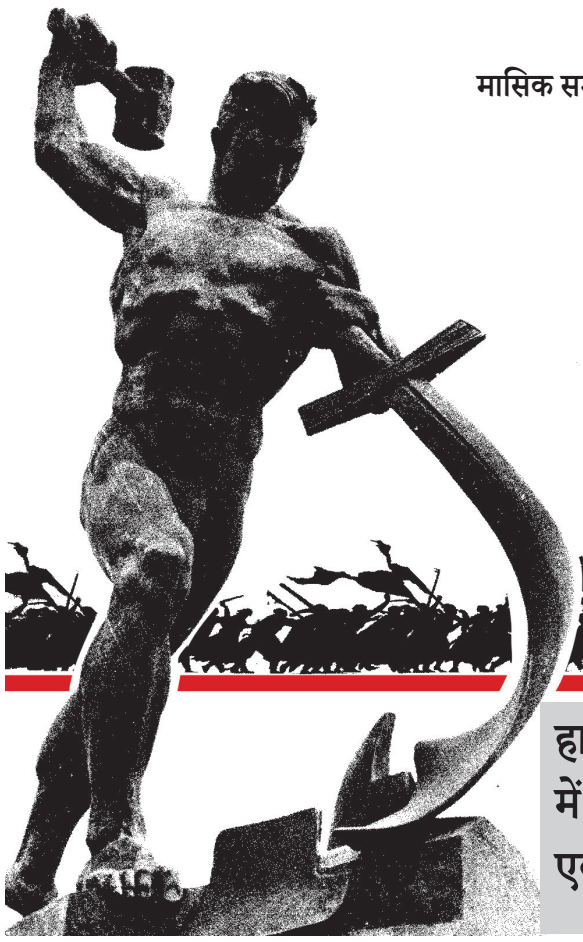

हालिया मज़दूर आन्दोलनों में हुए बिखराव की एक पड़ताल 11

विशेष रिपोर्ट : फ़ासीवाद की सही समझ के साथ इसके विरुद्ध संघर्ष तेज़ करने का संकल्प 8

भोपाल गैस हत्याकाण्ड के 40 साल 15

नया साल मज़दूर वर्ग के फ़ासीवाद-विरोधी प्रतिरोध और संघर्षों के नाम!

साम्राज्यवाद-पूँजीवाद के विरुद्ध क्रान्तिकारी संघर्षों के नाम!

सम्पादकीय अग्रलेख

मज़दूर और मेहनतकश साथियो, एक और साल फ़ासीवादी उभार के घटाटोप, मेहनतकश वर्गों के बिखराव, पस्तहिम्मती और क़दम पीछे हटाने में बीत गया। हमारे देश में साम्प्रदायिक फ़ासीवाद के हमले बदस्तूर जारी रहे, जबकि दुनिया ज़ायनवादी इज़रायल और उसके आक़ा साम्राज्यवादी अमेरिका के हाथों फ़लस्तीन में एक ऐसे क़त्ले-आम की गवाह बन रही है, जिसकी कोई मिसाल इतिहास में मौजूद नहीं है। दुनिया भर में जनता चुप बैठ गयी हो, ऐसा नहीं है। आये-दिन कभी दुनिया के इस कोने में तो कभी उस कोने में जनता और मज़दूर वर्ग के स्वत:स्फूर्त आन्दोलन फूटते रहते हैं। लेकिन ये आन्दोलन जनता के सब्र का प्याला छलक जाने का नतीजा होते हैं। इनके पीछे कोई निश्चित राजनीतिक लाइन या राजनीतिक नेतृत्व मौजूद नहीं होता। नतीजतन, ये बिखराव की अवस्था में ही समाप्त हो जाते हैं। आर्थिक संकट से बीते साल भी पूँजीवादी दुनिया निजात नहीं पा सकी है। उसकी सही तस्वीर आपको सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की दर या शेयर मार्केट के उछाल से नहीं मिल सकती है, जो मूलत: और मुख्यत:, सट्टेबाज़ पूँजी द्वारा पैदा किया गया बुलबुला होता है। असल में, उत्पादक अर्थव्यवस्था निरन्तर एक मन्द मन्दी से गुज़र रही है, जो बीच-बीच में गम्भीर संकटों में फूट पड़ रही है। जैसा कि सभी आर्थिक संकटों के दौर में होता है, सबसे बड़े पूँजीपति दूसरे छोटे और मँझोले पूँजीपतियों को निगलकर और तुन्दियल हो जाते हैं। 2024 में ही मोदी के चहेते अडाणी, अम्बानी, बिड़ला, टाटा और भारती मित्तल ने ग़ैर-वित्तीय कारपोरेट क्षेत्र की कुल पूँजी का 20 प्रतिशत अपने हवाले कर लिया! उनके मुनाफ़े दिखाकर हमें बताया जाता है कि अर्थव्यवस्था कैसे दिन-दूनी रात-चौगुनी तरक्की कर रही है। हमें पूँजीवादी मीडिया बताता है कि हम बेरोज़गारी और महँगाई से टूटती अपनी कमर पर ध्यान न दें! हम हमारे देश में अरबपतियों की बढ़ती संख्या पर गर्व करें! यही तो हमारे "राष्ट्रवादी" होने की निशानी है कि हम एक कम्पनी के अरबपति मालिक के आदेश में हफ़्ते भर में कम-से-कम 90 घण्टे काम करें, देश की तरक्की के लिए अपने पेट पर पट्टी बाँध लें, उनकी तिजोरियाँ अपने ख़ून को सिक्कों में ढालकर भरते जायें और कोई चूँ-चपड़ न करें! तब यह मान लिया जायेगा कि हम "देशभक्त" और "राष्ट्रवादी" हैं। इतिहास गवाह है कि बुर्जुआ वर्ग अपने राष्ट्रवाद की चक्की में इसी प्रकार मज़दूरों-मेहनतकशों को पीसता है। इसलिए जहाँ आप "राष्ट्र" या "राष्ट्रवाद" शब्द पढ़ें या सुनें तो उसकी जगह पर 'पूँजी' और 'पूँजी की चाकरी' शब्द पढ़ें: "राष्ट्र की तरक्की" यानी धन्नासेठ पूँजीपतियों की तरक्की और "राष्ट्रवादी" होने का सबूत मतलब बिना चूँ-चपड़ किये पूँजी की चाकरी और उजरती गुलामी करते जाना।

बीते साल 18वें लोकसभा चुनावों में फ़ासीवादी भाजपा की सीटें 303 से घटकर 240 रह गयीं। कई लोग इसे देखकर फूले नहीं समा रहे थे और इसे फ़ासीवाद को लगे भयंकर झटके के रूप में देख रहे थे। 'मज़दूर बिगुल' के सम्पादकीय में हमने तभी चेताया था कि फ़ासीवादी शासन के हमलावर रुख़ और मेहनतकश वर्ग के लिए उसके ख़तरे को चुनावी नतीजों के आधार पर कम करके आँकना मज़दूर वर्ग के लिए भारी भूल होगी। गठबन्धन सरकार बनाने के कारण भाजपा की नीतियों में बस एक ही बदलाव आयेगा: सीएए-एनआरसी, अपने साम्प्रदायिक 'यूनीफॉर्म' सिविल कोड जैसे कुछ केन्द्रीय प्रतीकात्मक मुद्दों पर कानून आदि बनाने का शोर वह कम कर देगी, हालाँकि बिना कोई क़ानून बनाये वह देश में मुसलमानों के अलगाव को, उनके विरुद्ध साम्प्रदायिक भावनाओं को उसी प्रकार या उससे भी ज़्यादा गति से भड़कायेगी। देश में भर में मस्जिदों के नीचे मन्दिर ढूँढने के लिए सर्वेक्षण करवाने से लेकर मॉब लिंचिंग व बुलडोज़र राज के नाम पर मुसलमानों के ख़िलाफ़ टुटपुँजिया व लम्पट सर्वहारा वर्ग के बीच दंगाई

(पेज 6 पर जारी)

दिल्ली विधानसभा के चुनावी मौसम में चुनावबाज़ पूँजीवादी पार्टियों को याद आया कि 'मज़दूर भी इन्सान हैं!'

● अजय

दिल्ली विधानसभा में चुनावी दंगल शुरू होने वाला है। दिल्ली का दंगल जीतने के लिए राजनीतिक दल अपनी-अपनी तैयारी में जुटे हैं । एक ओर भारतीय जनता पार्टी के नेता मज़दूर झुग्गियों-बस्तियों में जाकर रात्रि प्रवास कर रहे हैं, तो दूसरी ओर 'आप' नेता अरविन्द केजरीवाल सफाई कर्मचारियों से लेकर ऑटोवालों के साथ चाय पर चर्चा कर रहे हैं। साथ ही कांग्रेस पार्टी नेता भी अपने बिलों से निकलकर गली-गली घूम रहे हैं और दिल्ली "न्याय" यात्रा चला रहे हैं। साफ़ है कि चुनावी मौसम आते ही पूँजीपतियों की पार्टियों को "याद" आता है कि हम मज़दूर भी इन्सान है सिर्फ़ इसलिए कि हमारे वोट से ये सत्ता की सीढ़ी चढ़ सकते हैं। सत्ता की सीढ़ियाँ चढ़ते ही इन्हें फिर से 'गजनी' के आमिर ख़ान की तरह 'मेमोरी लॉस' (याददाश्त का जाना) हो जाता है। इसलिए पिछले पाँच साल अपने आलीशान महलों की ऐय्याशी से थोड़ा वक़्त निकालकर ये जनता का सेवक बनने का ढोंग कर रहे हैं। आइये, हम इन चुनावी मदारियों के कुछ वायदों और उनकी हक़ीक़त को देखते हैं, जिससे हम पता चलेगा कि ये कितने मज़दूर हितैषी हैं।

हम जानते है कि पिछले 10 सालों से दिल्ली की गद्दी पर बैठी आम आदमी पार्टी 2014 में ठेका प्रथा खत्म करने के वादे के साथ सत्ता में आयी थी। लेकिन बीते 10 सालों आप सरकार ने बस चन्देक मज़दूरों-कर्मचारियों को स्थायी नियुक्ति दी है जबकि आज भी जल बोर्ड, गेस्ट टीचरों, डीटीसी कर्मियों से लेकर सफाईकर्मियों ठेका पर गुलामी करने को मजबूर है। बल्कि इसी दौर में इससे कहीं ज़्यादा संख्या में ठेका मज़दूर बढ़े हैं। आज भी हजारों डीटीसी के कर्मचारी समान वेतन और संविदा कर्मचारियों को नियमित करने की अपनी माँगों के साथ संघर्षरत हैं लेकिन अभी तक आप सरकार की तरफ़ से उनकी माँगों पर कोई ठोस क़दम नहीं उठाया गया है। इसके विपरीत, सरकार ने परिवहन के सार्वजनिक विभाग को निजी कम्पनियों के हाथों में देने की शुरुआत कर दी है और लगातार नयी भर्तियाँ ठेके पर की जा रही हैं।

अगर केजरीवाल को

(पेज 7 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

नाज़िम हिकमत के जन्मदिवस (15 जनवरी) पर

कचोटती स्वतन्त्रता

तुम खर्च करते हो अपनी आँखों का शऊर,
अपने हाथों की जगमगाती मेहनत,
और गूँधते हो आटा दर्जनों रोटियों के लिए काफ़ी
मगर ख़ुद एक भी कौर नहीं चख पाते;
तुम स्वतन्त्र हो दूसरों के वास्ते खटने के लिए –
अमीरों को और अमीर बनाने के लिए तुम स्वतन्त्र हो।

जन्म लेते ही तुम्हारे चारों ओर
वे गाड़ देते हैं झूठ कातने वाली तकलियाँ
जो जीवनभर के लिए लपेट देती हैं तुम्हें झूठों के जाल में।
अपनी महान स्वतन्त्रता के साथ
सिर पर हाथ धरे सोचते हो तुम
ज़मीर की आज़ादी के लिए तुम स्वतन्त्र हो।

तुम्हारा सिर झुका हुआ मानो आधा कटा हो गर्दन से,
लुंज-पुंज लटकती हैं बाँहें,
यहाँ-वहाँ भटकते हो तुम अपनी महान स्वतन्त्रता में :
बेरोज़गारी रहने की आज़ादी के साथ
तुम स्वतन्त्र हो।

तुम प्यार करते हो देश को
सबसे क़रीबी, सबसे क़ीमती चीज़ के समान।
लेकिन एक दिन, वे उसे बेच देंगे,
उदाहरण के लिए अमेरिका को
साथ में तुम्हें भी, तुम्हारी महान आज़ादी समेत
सैनिक अड्डा बन जाने के लिए तुम स्वतन्त्र हो।

तुम दावा कर सकते हो कि तुम नहीं हो
महज़ एक औज़ार, एक संख्या या एक कड़ी
बल्कि एक जीता-जागता इन्सान –
वे फ़ौरन हथकड़ियाँ जड़ देंगे तुम्हारी कलाइयों पर।
गिरफ़्तार होने, जेल जाने या फिर फाँसी चढ़ जाने के लिए
तुम स्वतन्त्र हो।

नहीं है तुम्हारे जीवन में लोहे, काठ
या टाट का भी परदा;
स्वतन्त्रता का वरण करने की कोई ज़रूरत नहीं :
तुम तो हो ही स्वतन्त्र।
मगर तारों की छाँह के नीचे
इस क़िस्म की स्वतन्त्रता कचोटती है।

प्रिय पाठको,

अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल,
द्वारा जनचेतना,
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787,
IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

QR कोड व UPI

UPI: bigulakhbar@okicici

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सऐप)
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं।
मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर नि:शुल्क पढ़ा जा सकता है।
आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

अपने कारख़ाने, वर्कशॉप, दफ़्तर या बस्ती की समस्याओं के बारे में, अपने काम के हालात और जीवन की स्थितयों के बारे में हमें लिखकर भेजें। आप व्हॉट्सएप पर बोलकर भी हमें अपना मैसेज भेज सकते हैं। नम्बर है : 8853476339

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ-226016 फ़ोन: 8853476339
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 9289498250
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 10/- रुपये वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

राजधानी दिल्ली में एकजुट होकर अधिकारों के लिए आवाज़ उठायी मनरेगा मज़दूरों ने

5-6 दिसम्बर को जन्तर मन्तर पर नरेगा संघर्ष मोर्चा के बैनर तले, पूरे देशभर से सैकड़ों मनरेगा मज़दूरों ने मज़दूर विरोधी, ग़रीब विरोधी मोदी सरकार के ख़िलाफ़ दो दिवसीय विरोध प्रदर्शन किया। प्रदर्शनकारी मज़दूरों ने मनरेगा क़ानून के तहत तत्काल कार्रवाई की माँग की, जैसे कि मज़दूरी भुगतान में देरी, जॉब कार्डों को डिलीट करना और केन्द्र सरकार द्वारा पर्याप्त बजट का आवण्टन न करना शामिल थी। दो दिवसीय धरने में यूपी, बंगाल, बिहार, झारखण्ड, राजस्थान व हरियाणा के मज़दूरों की भागीदारी रही।

नरेगा संघर्ष मोर्चा के आशीष रंजन ने बताया कि बजट की बात करें तो मनरेगा बजट के लिए 86,000 हज़ार करोड़ आवण्टित किये गये हैं जो वित्तीय वर्ष 2023-24 के मद 1,05,299 करोड़ रुपये के वास्तविक व्यय से 19,298 करोड़ रुपये कम है। असल में केंद्र सरकार अगर इस योजना में कार्यरत मौजूदा मज़दूरों के कार्य दिवसों को बढ़ाने का इरादा रखती है, तो भी उन्हें मनरेगा बजट के लिए उसे 2.5 लाख करोड़ रुपये की आवश्यकता होगी। फिलहाल इस बजट के 86,000 करोड़ रुपये से केवल 35 दिन ही मनरेगा मज़दूर परिवारों को काम मिल पाएगा।

दूसरा, पिछले सालों के अनभुव से हम जानते है कि मौजूदा बजट की मद का 25 प्रतिशत हिस्सा पिछले वर्षों के बकाए का भुगतान करने में इस्तेमाल किया जाता है। इसलिए, अन्तिम आँकड़ा लगभग 60,000 करोड़ रुपये जो कि वास्तविक आवश्यकता का एक-चौथाई है। यानी कुल जीडीपी के प्रतिशत के रूप में इस वित्त वर्ष के लिए मनरेगा बजट का आवण्टन केवल 1 प्रतिशत के आस-पास है। इस बजट कटौती का सीधा अर्थ है मज़दूरों के कार्यदिवस की कटौती। साफ़ है कि मोदी सरकार आने वाले दिनों में मनरेगा के सीमित हक़-अधिकारों को भी छीनने पर आमादा है।

क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन (हरियाणा) के साथी अजय ने बताया कि आज मज़दूरों के साझा हितों के लिए हमें एकजुट होकर मोदी सरकार पर दबाव बनाना चाहिए। अगर हम हरियाणा के कैथल जिले के कलायत तहसील की बात करें तो मनरेगा मज़दूरों के बीच बेरोज़गारी, मज़दूरी के भुगतान में देरी व मनरेगा में भ्रष्टाचार जैसी समस्याएँ हैं। यूँ तो मनरेगा क़ानून 100 दिन के रोज़गार की गारण्टी का वादा करता है लेकिन हक़ीक़त में देश पैमाने पर मनरेगा के तहत 30-40 दिन ही परिवार को काम मिलता है।

वहीं बंगाल से आये मज़दूरों ने बताया की पश्चिम बंगाल में पिछले तीन साल से मनरेगा का काम बन्द पड़ा है। मोदी सरकार द्वारा फण्ड रोकने से मनरेगा मज़दूर बेहद बुरे हाल से गुज़र रहे हैं। मोदी सरकार और राज्य सरकार की नूराँकुश्ती में मज़दूर रोज़गार के अधिकार से वंचित हैं। जबकि मनरेगा एक्ट की धारा 27 किसी विशिष्ट शिकायत के आधार पर "उचित समय के लिए" अस्थायी निलम्बन से अधिक कुछ भी अधिकृत नहीं करती है। यह निश्चित रूप से केन्द्र को उन श्रमिकों के वेतन को रोकने के लिए अधिकृत नहीं करता है जो पहले से ही काम कर चुके हैं। यह मामला मोदी के मज़दूर विरोधी चेहरे को फिर उजागर करती हैं। ऐसे हालात में देशभर के मनरेगा मज़दूरों की एकजुटता मोदी सरकार की मजदूर विरोधी नीतियों का विरोध करते है।

हम माँग करते हैं...

(1) मनरेगा बजट में तत्काल बढ़ोतरी की जाये

(2) मनरेगा मज़दूरी दर में बढ़ोतरी की जाये

(3) समय पर भुगतान की गारण्टी की जाये

(4) तकनीकी तन्त्र का अन्त जिसमें मज़दूरी भुगतान को एनएनएमएस और एबीपीएस से अनिवार्य रूप से जोड़ना शामिल है

(5) बंगाल मनरेगा मज़दूरों का काम तत्काल शुरू किया जाये व मजदूरों की बकाया राशि जारी की जाये।

देशभर से आये मनरेगा मज़दूरों ने संकल्प लिया कि यह लड़ाई तब तक जारी रहेगी जब तक मनरेगा मज़दूरों को सम्मानजनक वेतन व साल भर काम नहीं मिल जाता।

– बिगुल संवाददाता

मज़दूर परिवार जान की गुहार लगाता रहा लेकिन प्रशासन चुनावी ताम-झाम में लगा रहा

हरियाणा प्रदेश के फतेहाबाद जिले में बसा छोटा सा गाँव गुल्लरवाला, जहाँ की लगभग 90% आबादी मजदूर वर्ग मेहनतकश वर्गों से सम्बन्धित है। गाँव में रहने वाले अधिकतर मजदूर कुई खुदाई का कार्य करते हैं। केवल गाँव में ही नहीं आसपास के क्षेत्र में भी कुई खुदाई का कार्य इसी गाँव के लोग करते आये हैं। कुई खुदाई करते समय मिट्टी के गिर जाने का खतरा निरन्तर बना रहता है। मौत के मुँह में कार्य करते इन लोगों का पीढ़ी दर पीढ़ी दशकों से मजदूरी के नाम पर कुई खुदाई का कार्य इनका पेशा बन चुका है। अधिकतर परिवार गरीब हैं और जीवनयापन के लिए जान जोखिम में डालकर काम करना पड़ता है।

अभी हाल में 4 अक्टूबर 2024 को, जहाँ एक तरफ हरियाणा में 5 अक्टूबर को होने वाले विधानसभा चुनाव की आखिरी तैयारियाँ जोरों शोरों पर चल रही थी इसी बीच गाँव में मातम छा गया। दरअसल हुआ यह कि गाँव के पाँच युवक जिनमें अधिकतर युवा थे और एक अधेड़ उम्र का रमेश, एक खेत में ट्यूबेल लीक होने की मरम्मत के लिए ट्यूबवेल के पास खुदाई करने चले गये। यह काम खेत के मालिक ने उनको दिया था।

फ़ाइल फ़ोटो

ट्यूबेल के साथ-साथ खुदाई करते हुए जहाँ से ट्यूबवेल लीक था वहाँ पर उनको पाइप की मरम्मत करनी थी चाहे वह कितनी भी गहराई में क्यों ना हो। तंगहाली से गुजरते समय में आखिर वह मजदूरी से कैसे मना कर सकते थे और उन्होंने खुदाई का कार्य शुरू कर दिया। लगभग 45 फीट खोदने के बाद जब ट्यूबवेल लीक का कुछ पता नहीं चला तो उनमें से दो युवक घर वापस आ गये। शर्त लेकिन यह थी की यदि वह मज़दूर कार्य को बीच में छोड़ते तो उनको इस हालत में कोई भी मज़दूरी नहीं मिलती। लगातार खुदाई होती गई और गहराई के साथ ट्यूबवेल के पानी खींचने की वजह से मिट्टी बिल्कुल नरम हो चुकी थी। वह अपने औजारों के साथ खुदाई करता हुआ लगभग 60 फीट नीचे तक जा चुका था। इसी दौरान शाम के लगभग 5:00 बजे के करीब एक अनहोनी हुई हुई और आस-पास की मिट्टी खुदाई करते हुए युवक के ऊपर गिर गई। जब तक आसपास के लोग कुछ करते , तब तक युवक अपनी जान गँवा चुका था। आसपास के लोगों ने अपने स्तर पर जितना वह कर सकते थे, किया।

बचाव कार्य चलाया गया परन्तु कुछ भी हाथ नहीं लगा पूरी रात गुजर गई किन्तु यह मज़दूर का कुछ भी अता-पता नहीं था। परिजनों के पास जब खबर पहुँची तो परिवार में मातम छा गया। अभी तक कोई भी सरकारी कर्मचारी मौके पर नहीं पहुँचा था। ग्रामीणों में रोष भर गया। 5 अक्टूबर को जब हरियाणा विधानसभा के चुनाव गाँव के सरकारी स्कूल में हो रहे थे तो गाँव वालों ने वहाँ पर उपस्थित अधिकारियों के सामने रोष प्रदर्शन किया और मदद की गुहार लगाई। मौके पर जिला उपायुक्त को उपस्थित होना पड़ा तथा स्थिति को सँभालने के लिए पुलिस कर्मियों को निर्देश दिए गये कि ग्रामीणों को वहाँ से भगा दिया जाए । पुलिसकर्मियों के साथ ग्रामीण की झड़प भी हुई और अन्त में पुलिसकर्मियों द्वारा ग्रामीणों को वहाँ से भगा दिया गया। मज़दूर रमेश के दो बच्चे जिनकी उम्र 18 वर्ष से कम है, पत्नी , पिता और माँ द्वारा प्रशासन व ग्रामीणों से मदद की अपील की गई किन्तु ग्रामीणों व कुछ समाजसेवी संगठनों के अलावा प्रशासन द्वारा मौके पर किसी भी प्रकार की सहायता नहीं की गई।

प्रशासन अपने चुनाव में व्यस्त था और दूसरी तरफ युवक को निकालने के लिए लगातार कोशिश हो रही थी। न कोई सांसद और न ही कोई विधायक मौके पर पहुँचा। चुनाव खत्म होने के अगले दिन प्रशासन द्वारा एक टीम भेजी गई जिसने इतनी धीमी गति से बचाव कार्य किया कि अगले 5 दिनों में युवक को लगभग 75 फुट नीचे से निकाला गया।

पूँजीवाद लोकतन्त्र की सच्चाई अब इससे ज्यादा क्या साबित होगी कि एक युवक की जिन्दगी से महत्वपूर्ण चुनाव सम्पन्न करवाना था! इस गली सड़ी व्यवस्था में ऐसी घटनाएँ कोई नयी बात नहीं है। देशभर में खतरनाक कार्यों को बिना सुरक्षा उपकरणों के करते हुए मजदूरों की जिन्दगियाँ हर रोज मौत के मुँह में चली जाती हैं और प्रशासन के लिए यह महज एक दुर्घटना होती है किन्तु जिन परिवारों से कोई चला जाता है उनकी जिन्दगी गरीबों के बोझ तले और भी दब जाती है। असंगठित क्षेत्र के मजदूरों को सरकार द्वारा कोई मुआवजा नहीं दिया जाता अगर थोड़ा बहुत मुआवजा दिया भी जाता है तो उसका मकसद ये होता है कि मज़दूर परिवार न्याय के लिए आवाज ना उठा सकें और उनके गुस्से पर कुछ ठण्डे पानी के छींटे पड़ जाएँ।

– गुरुदास, सिधानी (हरियाणा)

भाजपा की वाशिंग मशीन : भ्रष्टाचारी को "सदाचारी" बनाने का तन्त्र!

● अविनाश

भाजपा ने सत्ता की मशीनरी जैसे ईडी, सीबीआई, एसीबी, आईटी, न्यायपालिका, चुनाव आयोग व अन्य को मिलाकर एक ऐसी नायाब वाशिंग मशीन तैयार की है, जिससे इस मशीन में किसी भ्रष्ट नेता पर चाहे कितने ही पुराने हजारों करोड़ रुपये के घोटाले क्यों न हो, अगर वह भाजपा के साथ गठबन्धन में या फिर भाजपा में शामिल हो जाता है, तो उसके सारे भ्रष्टाचार ख़त्म हो जाते है और यकायक वह सदाचार की मूर्ति बन जाता है। इस मशीन में एक तरफ़ से भ्रष्ट नेता को डाला जाये तो दूसरी तरफ़ से वह बिलकुल साफ़-सुथरा सदाचारी बनकर बाहर निकलेगा। आप सोच रहे होंगे यह कोई मज़ाक है। नहीं! बिलकुल भी नहीं! यह आज की हक़ीक़त है!

सच्चाई यह है कि आज यह पूरा तन्त्र राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ व उसके चुनावी मोर्चे भाजपा द्वारा समूची राज्यसत्ता की मशीनरी में अन्दरूनी टेकओवर (कब्ज़े) की प्रक्रिया को लगातार दिखला रहा है। इसका हालिया उदहारण हमें अजित पवार के रूप में भी देखने को मिल जाता है। इन महोदय पर 70,000 करोड़ के सिंचाई घोटाले का आरोप लगा था। साथ ही ईडी ने सतारा के जरान्देश्वर सहकारी चीनी मिल की 2010 में कथित धोखाधड़ी से हुई बिक्री से जुड़े मनी लॉण्डरिंग (पैसों की हेरफेर) मामले में भी अजित पवार की जाँच की जा रही थी। इनके भ्रष्टाचार पर नरेन्द्र मोदी भी संसद में और महाराष्ट्र के विधानसभा चुनाव के प्रचार में बड़ी-बड़ी बातें बघारा करते थे। मगर जैसे ही अजित पवार भाजपा के साथ गठबन्धन में आये है, तब से वह मोदी जी के चहेते बन गये हैं, परम "सदाचारी" बन गये हैं और उनके सितारे बुलन्दी पर हैं। एक के बाद एक भ्रष्टाचार के सारे आरोपों से उन्हें मुक्त किया जा रहा है। अब तो भाजपा के देवेंद्र फडणवीस के साथ में शपथ लेने के बाद एण्टी करप्शन ब्यूरो (एसीबी) ने अजित पवार को क्लीन चिट भी दे दी है।

अजित पवार पर घोटालों के मामले

अजित पवार, 1999 और 2014 के बीच कांग्रेस-राकांपा की विभिन्न गठबन्धन सरकारों में अलग-अलग मौकों पर सिंचाई मन्त्री थे। आर्थिक सर्वेक्षण में यह सामने आया था कि एक दशक में सिंचाई की अलग-अलग परियोजनाओं पर 70 हजार करोड़ रुपए ख़र्च होने के बावजूद राज्य में सिंचाई क्षेत्र का विस्तार महज 0.1 प्रतिशत हुआ। परियोजनाओं के ठेका के नियमों को ताक पर रखकर कुछ चुनिन्दा लोगों को ही दिए गये थे। सिंचाई विभाग के एक पूर्व इंजीनियर ने तो चिट्ठी लिख कर ये भी आरोप लगाए थे कि नेताओं के दबाव में कई ऐसे बाँध बनाये गये, जिनकी ज़रूरत ही नहीं थी। इंजीनियर ने यह भी लिखा था कि कई बाँध कमज़ोर बनाये गये। 2014 में महाराष्ट्र में सत्ता में आने से पहले चुनाव प्रचार के समय भाजपा ने सिंचाई घोटाले को ज़बरदस्त मुद्दा बनाया था। देवेन्द्र फडणवीस टीवी पर पाँच साल पहले घोटाले को लेकर चीख-चीख कर कहा करते थे कि अजित पवार को जेल में "चक्की पीसिंग एण्ड पीसिंग" करायेंगे। यही राग ख़ुद प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी भी अलापा करते थे। लेकिन आज देवेन्द्र फडणवीस अजित पवार के साथ गठबन्धन में सरकार चला रहे हैं। यानी, भाजपा के विरोध में तो भ्रष्टाचारी, भाजपा के साथ में तो सदाचारी! मोदी-शाह और समूचे संघ परिवार का "चाल-चेहरा-चरित्र" शुरू से ऐसा ही रहा है।

ज़रा ग़ौर से समझिये कि भाजपा की वाशिंग मशीन के कमाल से कैसे अजित पवार के उपमुख्यमन्त्री बनने के दो दिन बाद ही 70 हजार करोड़ रुपये के सिंचाई घोटाले से जुड़े नौ मामलों की फाइल बन्द की दी गयी है। यह घोटाला विदर्भ क्षेत्र में हुआ था और महाराष्ट्र का एण्टी करप्शन ब्यूरो (एसीबी) इसकी जाँच कर रहा था। एण्टी करप्शन ब्यूरो (एसीबी) के डीजी परमबीर सिंह ने कहा कि जो केस बन्द किए गये हैं, उनमें से एक में भी अजित पवार का नाम नहीं था। ये सभी रुटीन मामले थे और इनमें कोई भी अनियमितता नहीं पायी गयी। इसके अलावा सबूतों के अभाव में जरंदेश्वर चीनी मिल से सम्बन्धित तमाम भ्रष्टाचार के आरोप भी खारिज़ कर दिए गये है और आयकर विभाग (आई-टी) ने महाराष्ट्र के उपमुख्यमन्त्री अजीत पवार और उनके परिवार से 2021 में ज़ब्त की गई 1,000 करोड़ रुपये से अधिक की सम्पत्तियाँ वापस कर दी हैं।

अजित पवार के अलावा महाराष्ट्र में भाजपा-शिवसेना सरकार में शामिल होने के लिए पाला बदलने वाले और कैबिनेट मन्त्री के रूप में शपथ लेने वाले नौ राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी (राकांपा- अजित गुट) विधायकों में से चार विभिन्न मामलों में केन्द्रीय जाँच एजेंसी प्रवर्तन निदेशालय (ईडी) या एण्टी करप्शन ब्यूरो (एसीबी) की जाँच के दायरे में हैं। अजित पवार, छगन भुजबल और हसन मुश्रीफ मनी लॉण्डरिंग से जुड़े मामलों की जाँच के दायरे में हैं। मगर भाजपा से जुड़ने के बाद इनके मामलों पर या तो कोई कार्रवाई ही नहीं हो रही या फिर इन्हें रफ़ा-दफ़ा कर दिया गया है।

देश भर में भाजपा की वाशिंग मशीन का कमाल देखने को मिल रहा है। देश में कई प्रमुख नेता हैं, जिनपर भाजपा ने पहले भ्रष्टाचार और ग़ैर-कानूनी कार्य करने के आरोप लगाये थे। मगर अब उन्हें 'पाक- साफ़' क़रार दे दिया गया है। इसका कारण बिलकुल साफ़ है : या तो वे भाजपा में शामिल हो गये या वे एनडीए गठबन्धन में शामिल हो गये। इनमें से कुछ प्रमुख नेता यह है:

1. हिमंत बिस्वा सरमा: गुवाहाटी में जलापूर्ति घोटाले में आरोपी। भाजपा ने पहले उनके ख़िलाफ़ एक श्वेत पत्र निकाला था।

2. नारायण राणे: उनके ख़िलाफ़ सीबीआई/ईडी द्वारा कई मामले दर्ज़ हैं। भाजपा नेता किरीट सोमैया ने उनके ख़िलाफ़ भ्रष्टाचार के आरोप लगाए थे।

3. हसन मुश्रीफः ईडी हसन मुश्रीफ से जुड़े मनी लॉण्डरिंग मामले और कोल्हापुर स्थित चीनी मिल, सर सेनापति संताजी घोरपड़े शुगर फैक्ट्री लिमिटेड में कथित अनियमितताओं की जाँच कर रही है। फैक्ट्री मुश्रीफ के परिवार द्वारा संचालित है।

5. छगन भुजबल: 2016 में, ईडी ने महाराष्ट्र सदन घोटाले से जुड़े मनी लॉण्डरिंग मामले में छगन भुजबल को गिरफ्तार किया था। उन्हें 2018 में बॉम्बे हाईकोर्ट ने जमानत दे दी थी। महाराष्ट्र के मन्त्री छगन भुजबल, उनके रिश्तेदारों और फर्मों के ख़िलाफ़ 'बेनामी सम्पत्ति' की कार्रवाई भी बन्द हो गई है।

6. अशोक चव्हाणः भाजपा ने उन पर आदर्श हाउसिंग सोसाइटी घोटाले का आरोप लगाया, और उनके भाजपा में शामिल होने के बाद से इस मामले में कुछ भी आगे नहीं बढ़ा।

जहाँ एक तरफ़ मुकुल रॉय, सुवेंदु अधिकारी, मिथुन चक्रवर्ती, सोवन चटर्जी, वाईएस चौधरी, सीएम रमेश, प्रफुल्ल पटेल व अन्य सारे उदाहरण आपके सामने हैं, जो भाजपा के समर्थक बनते या उसमें शामिल होते ही परम भ्रष्टाचारी से परम "सदाचारी" बन गये, वहीं दूसरी तरफ़ मोदी सरकार के कार्यकाल में ही हुए राफेल घोटाला, पीएम केयर घोटाला, अडानी घोटाला, सेण्ट्रल विस्टा प्रोजेक्ट घोटाला, इलेक्टोरल बॉन्ड घोटाला जैसे घोटाले भी है, जिनकी जाँच की फाइल ही नहीं बन रही हैं। ऐसे में 'बहुत सह लिया भ्रष्टाचार अबकी बार मोदी सरकार' और 'न खाऊँगा न खाने दूँगा' जैसे मोदी के जुमलों की हक़ीक़त व संघ परिवार व भाजपा द्वारा सरकारी एजेंसियों ईडी, सीबीआई, एसीबी, आईटी, न्यायपालिका, चुनाव आयोग व अन्य के अन्दर घुसपैठ की तस्वीर अच्छी तरह से सबके सामने आ रही है। भाजपा सरकार अपने आपको चाहे जितना भी "संस्कारी", "धर्मध्वजाधारी", "राष्ट्रवादी" का तमगा लगा लें, मगर इनके "चाल-चेहरा-चरित्र" की सच्चाई सबके सामने आने लगी है। भाजपा सरकार 'देशभक्ति', हिन्दू-मुसलमान साम्प्रदायिकता, मन्दिर-मस्जिद, 'लव जिहाद', 'गोरक्षा', आदि के फ़र्जी शोर में इन्हें दबाने की कोशिश ज़रूर कर रही है, मगर मोदी का 56 इंच का सीना सिकुड़ता जा रहा है।

मोदी राज में 'अडानी भ्रष्टाचार - भ्रष्टाचार न भवति' !

● वृषाली

भाजपा के "रामराज्य" में अडानी महोदय पर भ्रष्टाचार के आरोप थमने का नाम नहीं ले रहे। 2023 और 2024 में हिण्डनबर्ग के दो खुलासों के बाद 20 नवम्बर को एक अमेरिकी कोर्ट ने भी गौतम अडानी समेत 7 लोगों पर रिश्वतख़ोरी और धोखाधड़ी के आरोप लगाये हैं। अमेरिकी कोर्ट के अभियोग के अनुसार अडानी पर भारत में सरकारी अधिकारियों को 2236 करोड़ रूपये की रिश्वत देकर राज्य विद्युत वितरण कम्पनियों के साथ "लाभदायक सौर ऊर्जा आपूर्ति अनुबन्ध" हासिल करने का आरोप है। हर बार की तरह अडानी जी की रक्षा में भाजपा के नेता समेत आईटी सेल के भाड़े के टट्टू मैदान में उतर चुके हैं। भाजपा नेताओं के लिए तो अडानी जी ही देश हैं, इसलिए अडानी पर हमला "देश" पर हमला है, विदेशी ताक़तों की साज़िश है। इन सब (कु)तर्कों के बावजूद अडानी जी ने विदेशों में देश का डंका तो बजवा ही दिया है।

क्या है पूरा मामला?

रिश्वतख़ोरी के इस मामले में भाजपा और आईटी सेल अडानी के बचाव में यह तर्क दे रहे कि जिन राज्यों में विद्युत वितरण के अनुबन्ध हासिल किये गये वहाँ विपक्ष की सरकारें थीं (हालाँकि आन्ध्र प्रदेश, ओड़ीसा, तमिलनाडु और छत्तीसगढ़ के अलावा जम्मू और कश्मीर भी इस फ़ेहरिस्त में शामिल है जहाँ उस वक़्त राष्ट्रपति शासन था)। लेकिन मुद्दा सिर्फ़ इन पाँच राज्यों का नहीं है, इस भ्रष्टाचार की जड़ें भारत सरकार के उपक्रम 'सेकी' (सोलर एनर्जी कार्पोरेशन ऑफ इण्डिया लिमिटेड) से जुड़ती हैं। कैसे? 2019 में भारत सरकार के इस उपक्रम के तहत निकले टेण्डर की नीलामी हुई थी। टेण्डर के निबन्धन और शर्तें अडानी के जूतों के हिसाब से पैर काटने के समान थीं। इस नीलामी में अडानी ग्रीन एनर्जी के अलावा अज़्योर पावर और नवयुग इंजीनियरिंग कम्पनी लिमिटेड दौड़ में सबसे आगे थे (अमेरिकी कोर्ट में चल रहे मामले में अज़्योर पावर का नाम भी शामिल है और उसने जाँच में सहयोग की सहमति दे दी है)। नवयुग लिमिटेड और अडानी समूह के बीच आन्ध्र प्रदेश स्थित एक बन्दरगाह को लेकर हुए एक सौदे के बाद नवयुग लिमिटेड इस दौड़ से ही बाहर हो गयी। 'रिपोर्टर्स कलेक्टिव' की एक जाँच ने इस बात को उजागर किया है कि किस प्रकार केन्द्र सरकार और 'सेकी' ने अपने टेण्डर के नियमों को अडानी के अनुकूल बनाने का काम किया ताकि कॉण्ट्रैक्ट अडानी ग्रीन के हाथ ही लगे। ये कोई पहली दफ़ा नहीं था जब कोई सरकारी टेण्डर फिसलता हुआ अडानी समूह के हाथों में आ गिरा। वैसे तो मोदी जी 'रेवड़ी कल्चर' के विरोधी हैं, लेकिन सत्तासीन होने के बाद अडानी के प्रति उनकी नीति 'अन्धा बाँटे रेवड़ी फ़िर-फ़िर' अपने को ही दे वाली हो गयी है! 2018 में प्रकृतिक गैस पाइपलाइन बिछाने और संचालित करने के काम में सबसे बड़ा टेण्डर अडानी समूह के हाथ लगा था। 2019 में 6 एयरपोर्टों के संचालन का टेण्डर अकेले (और इस क्षेत्र में बिलकुल नये) अडानी समूह को मिला। यह फ़ेहरिस्त काफ़ी लम्बी है। मोदी राज में अडानी जी की धन-सम्पदा में अकूत बढ़ोत्तरी ही "रामराज्य" की असल परिचायक है। 2013 में भारत में अडानी के पास 44 परियोजनाएँ थीं, 2018 आते-आते यह संख्या 92 हो गयी। 2014 में भाजपा की सरकार बनने के लिए जब मोदी जी गुजरात से अडानी जी के निजी हवाई जहाज़ में चढ़े थे, तब उस हवाई जहाज़ के साथ-साथ अडानी जी क़िस्मत ने भी उड़ान भर ली थी।

बहरहाल, वापस मुद्दे पर लौटते हुए, 'सेकी' 2011 से नीलामी के ज़रिये विद्युत उत्पादकों से ऊर्जा ख़रीद कर राज्यों को बेचने का काम कर रही है। 2018 में 'सेकी' ने उन कम्पनियों से सौर्य ऊर्जा की ख़रीद की घोषणा की जो सौर्य संयन्त्र का भी उत्पादन करते हों। टेण्डर में जिस स्तर पर सौर्य ऊर्जा के उत्पादन की शर्त रखी गयी थी वह ख़ासा अडानी की कम्पनी के अनुकूल थी। इस नीलामी के ज़रिये 'सेकी' और विजेता कम्पनी के बीच 25 साल का क़रार होना तय था। जिस शुल्क पर बिजली ख़रीद समझौता तय हुआ (2.92 रुपये प्रति यूनिट), उस हिसाब से 25 सालों में अडानी ग्रीन और अज़्योर, दोनों को 1.5 लाख करोड़ का राजस्व मिलना तय था। क़रारनामे के 1.5 साल बाद

(पेज 5 पर जारी)

उत्तर प्रदेश में बिजली विभाग को निजी हाथों में सौंपने पर आमादा योगी सरकार

● अमित

उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों के लागू होने के ढाई दशक बाद इनका कहर देश की मेहनतकश जनता के ऊपर सबसे बर्बर रूप में बरपा हो रहा है। देश की सत्ता में बैठी फ़ासीवादी भाजपा सरकार इन नीतियों को लागू करने के मामले में हर दिन नया रिकॉर्ड बना रही है। अभी हाल ही में उत्तर प्रदेश में बिजली का वितरण करने वाले दो निगमों के निजीकरण का फ़ैसला लिया गया है। बिजली विभाग के घाटे में होने का हवाला देकर सरकार इसे अपने आका पूँजीपतियों को औने-पौने दामों पर बेचने की तैयारी कर चुकी है। पूर्वांचल और दक्षिणांचल के विद्युत वितरण निगमों से इसे लागू करने की योजना बनायी गयी है। आगे इसी मॉडल को अन्य जगहों पर भी लागू किया जायेगा।

वास्तव में सत्ता में आने के बाद से ही योगी सरकार किसी-न-किसी बहाने से बिजली विभाग को निजी हाथों में सौंपने की पूरी कोशिश में जुटी हुई है। इसके पहले कर्मचारियों ने जुझारू आन्दोलन के दम पर सरकार को पीछे हटने के लिए बाध्य किया था। लेकिन सत्ताधारी योगी सरकार अपने द्वारा ही किये गये समझौते से मुकरते हुए कर्मचारियों के साथ धोखेबाजी पर उतर आयी है।

बिजली विभाग के घाटे में होने की वजह सरकारी कर्मचारी नहीं सरकार की नीतियाँ हैं!

निजीकरण करने के पीछे बिजली विभाग के घाटे में होने का हवाला दिया जा रहा है लेकिन सच यह है कि बिजली विभाग के घाटे में होने के लिए सरकार की नीतियाँ ही ज़िम्मेदार हैं। उत्तर प्रदेश में निजी कम्पनियों से ऊँची दरों पर बिजली ख़रीदी जा रही है, जिसकी वजह से बिजली विभाग लगातार घाटे में जा रहा है। जाहिर है कि योगी सरकार की मंशा अपने आका पूँजीपतियों को लाभ पहुँचाना है जिसके लिए वह उनकी कम्पनियों से ऊँचे दामों पर बिजली ख़रीद रही है और अब बिजली के वितरण की ज़िम्मेदारी भी उन्हीं को सौंप कर जनता को लूटने की खुली छूट दे रही है। उत्तर प्रदेश में सबसे सस्ती बिजली राज्य सरकार की कम्पनियों से ख़रीदी जाती है जो लगभग 1 रुपये प्रति यूनिट की दर से मिलती है और सबसे महँगी बिजली प्राइवेट कम्पनियों से जो लगभग 6 रुपये प्रति यूनिट की दर से मिलती है! साफ़ है कि अगर सरकारी बिजली कम्पनियों को बढ़ावा दिया जाये और सरकारी विभागों को दुरुस्त किया जाये तो बिजली की लागत को बहुत कम किया जा सकता है और बिजली विभाग के घाटे को कम या बिलकुल समाप्त किया जा सकता है।

इसके अलावा निजी कम्पनियों को बिजली देने से बिजली विभाग फ़ायदे में चला जायेगा, यह भी पूरी तरह से झूठ है। उड़ीसा में भी बिजली विभाग के घाटे में होने का हवाला देकर विभाग का निजीकरण किया गया था, लेकिन निजी कम्पनी के कई गुना घाटे में चले जाने के कारण इसे वापस लेना पड़ा। वर्ष 2015 में उड़ीसा विद्युत नियामक आयोग ने इसी वजह से रिलायंस के सभी लाइसेंस रद्द कर दिये थे।

इसके पहले भी बिजली विभाग के घाटे में होने का हवाला देकर वर्ष 2000 में विद्युत परिषद का विघटन कर दिया गया था। लेकिन उस समय 77 करोड़ प्रतिवर्ष का घाटा आज 24 साल बाद बढ़कर 1 लाख 10 हज़ार करोड़ पहुँच गया है। उस समय भी सरकार द्वारा इस फ़ैसले की समीक्षा करने और इसके कारगर न होने पर इसे वापस लेने की बात कही थी। लेकिन आज जब निजी कम्पनियों के कारण हालात और अधिक बिगड़ चुके हैं, इस फ़ैसले को वापस लेने की बजाय सरकार और आगे बढ़ते हुए पूरे विभाग को ही निजी हाथों में सौंपने जा रही है। ज़ाहिर है कि विभागों को विघटित करने और अब उसे निजी हाथों में सौंपने की यह क़वायद बिजली विभाग को घाटे से फ़ायदे में पहुँचाने के लिए नहीं बल्कि अपने आका पूँजीपतियों की जेब में पहुँचाने के लिए की जा रही है।

निजीकरण आम जनता के लिए क्यों ख़तरनाक है?

देश के जिन भी राज्यों में प्राइवेट कम्पनियों को बिजली सौंपी गयी है, वहाँ जनता को अधिक दाम पर बिजली ख़रीदनी पड़ती है। इतना ही नहीं, बिजली की क़ीमतें बढ़ने से उन सभी चीज़ों की क़ीमतें भी बढ़ जायेंगी जिनको बनाने में बिजली का इस्तेमाल किया जाता है। मतलब साफ़ है कि निजीकरण पूँजीपतियों की तिजोरी भरने के लिए आम जनता की जेब से पाई-पाई वसूलने की योजना है। यानि पब्लिक के पैसे से खड़े किये गये सरकारी विभागों को प्राइवेट कम्पनियों को बेचने और पब्लिक की जेब खाली करके पूँजीपतियों की तिजोरी भरने की स्कीम। इसी को सरकार पीपीपी मॉडल का नाम देती है – पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप।

दूसरी बात यह भी है कि आम घरों से आने वाले जिन लोगों को सरकारी विभागों में पक्की नौकरियाँ मिलती थीं, बिजली समेत तमाम विभागों के प्राइवेट हाथों में बेचे जाने से यह सारे अवसर समाप्त हो जायेंगे। पूर्वांचल और दक्षिणांचल के जिन वितरण निगमों को प्राइवेट हाथों में देने की योजना बनायी गयी है, उनमें 27,000 से अधिक कर्मचारी काम कर रहे हैं। बिजली विभाग के निजीकरण के बाद इन कर्मचारियों की एक बड़ी संख्या को काम से बाहर और पदावनत कर दिया जायेगा। इसके अलावा इन विभागों में पहले ही एक बड़ी संख्या को परमानेण्ट नौकरी की बजाय ठेके या संविदा पर काम करना पड़ता है। बिजली के निजीकरण की बाद जो थोड़े-बहुत परमानेण्ट भर्तियों के अवसर बचे भी थे, वह भी समाप्त हो जायेंगे। छात्रों-युवाओं की एक बड़ी आबादी जो बनारस, इलाहाबाद, दिल्ली, पटना जैसी जगहों पर जाकर सरकारी नौकरियों की तैयारी करती है, उनके ऊपर यह एक भयंकर कुठाराघात होगा। इससे स्पष्ट है निजीकरण केवल कर्मचारियों के लिए ही नहीं बल्कि आम जनता के हर हिस्से के लिए बहुत घातक है।

वास्तव में भारत सहित आज पूरी दुनिया का पूँजीपति मुनाफ़े की गिरती हुई दर के भयंकर संकट से त्रस्त हैं। यही वजह है कि दुनिया भर में ऐसी फ़ासीवादी, तानाशाही, धुर दक्षिणपन्थी ताक़तें सत्ता में आ रही हैं जो किसी भी तरह से जनता के हक़ों-अधिकारों को छीनकर, उनको मिलने वाली हर सुविधा में कटौती करके पूँजीपतियों को इस संकट से उबार सकें। हमारे देश में सत्तासीन भाजपा भी एक फ़ासीवादी पार्टी है जो एक तरफ़ जनता को मिलने वाली हर सुविधा में कटौती करके पूँजीपतियों की जेबें भरने पर आमादा है, दूसरी तरफ़ जनता के असन्तोष को भटकाने के लिए हिन्दू-मुसलमान, मन्दिर-मस्ज़िद के नाम पर पूरे देश को साम्प्रदायिक आग में झोंक रही है।

बिजली विभाग के निजीकरण से पहले भी सभी श्रम क़ानूनों को एक-एक करके समाप्त कर देने, आईटी सेक्टर में 14 घण्टे तक काम करने का नियम लागू करने, पक्की नौकरियों को समाप्त करके हर विभाग में ठेका-संविदा की प्रथा लागू करने के मामले में भाजपा सरकार ने पिछली सभी सरकारों को पीछे छोड़ दिया है।

असल में राष्ट्रवाद और देशभक्ति की माला जपने का काम करने वाली भाजपा के लिए देश का मतलब देश के पूँजीपति हैं। इनका राष्ट्रवाद इन पूँजीपतियों की थैली की रक्षा करना है। आम जनता को निचोड़ना और देश की हर सम्पदा को पूँजीपतियों के हवस की भट्टी में झोंक देना ही इनके लिए असली देशभक्ति और राष्ट्रवाद है। यही वह सच्चाई है जिसको छिपाने के लिए सम्भल से लेकर बहराइच तक में साम्प्रदायिक दंगों की आग भड़कायी जाती है। हिन्दुओं और मुसलमानों को एक-दूसरे का दुश्मन बता दिया जाता है ताकि वो अपने असली दुश्मन यानि इन फ़ासिस्टों और इनके आका धनपशुओं को पहचान न सकें।

ऐसे में न केवल इन फ़ासिस्टों की असली सच्चाई को लोगों के बीच लेकर जाने की ज़रूरत है बल्कि निजीकरण के पक्ष में किये जा रहे हर तरह के झूठे प्रचार की कलई खोलने की ज़रूरत है। मज़दूरों-कर्मचारियों-छात्रों की व्यापक एकजुटता के दम पर ही इस फ़ासीवादी हमले का मुक़ाबला किया जा सकता है।

मोदी राज में 'अडानी भ्रष्टाचार - भ्रष्टाचार न भवति' !

(पेज 4 से आगे)

दोनों ही कम्पनियों ने अपने शुल्क कम कर (2.54 और 2.42 प्रति kWh) दिये। बावजूद इसके 'द रिपोर्टर्स कलेक्टिव' के अनुमान से अडानी ग्रीन को 25 सालों में कम से कम 53,000 करोड़ रुपये का राजस्व प्राप्त होगा। 2020 में अडानी समूह को दुनिया का सबसे बड़ा सौर्य ऊर्जा प्लान्ट बनाने का ठेका मिलने की ख़बर आयी थी।

'सेकी' के साथ हुए बिजली ख़रीद समझौते के बाद भी शुल्क ज़्यादा होने की वजह से कोई भी राज्य इस दर पर बिजली आपूर्ति समझौते के लिए तैयार नहीं था। अडानी जी ने इसी मजबूरी में घूसख़ोरी का दामन थाम लिया और (अप्रैल 2022 के हिसाब से) 2,029 करोड़ रुपये की रिश्वत दी। इस रक़म में से तक़रीबन 1,750 करोड़ रुपये आन्ध्र प्रदेश में अकेले एक व्यक्ति को दिये गये जिसके बाद राज्य की तीन वितरण कम्पनियाँ (सभी राज्यों में सबसे ज़्यादा) 'सेकी' से 7000 मेगावॉट बिजली ख़रीदने को तैयार हो गईं। चूँकि इस परियोजना के नाम पर जुटाये पैसों में 175 मिलियन डॉलर अडानी ने अमेरिकी निवेशकों से जुटाये थे तो अमेरिकी कोर्ट ने गौतम अडानी समेत 7 व्यक्तियों पर रिश्वतख़ोरी और अमेरिकी निवेशकों से धोखाधड़ी के आरोप लगाये हैं। हालाँकि ट्रम्प की हालिया जीत के बाद नयी अमेरिकी सरकार का रुख़ बदलने की भी सम्भावना बनती नज़र आती है।

इस पूरे वाकये के बाद अडानी समूह से ज़्यादा सक्रियता से गोदी मीडिया, भाजपा और आईटी सेल अडानी के बचाव का ज़िम्मा उठाए घूम रहा है। कहने को इस घूसख़ोरी में संलिप्त विपक्षी दलों की सरकारें थीं, तिस पर भी मोदी जी का भ्रष्टाचार के प्रति "ज़ीरो टॉलरेंस" का काँटा अभी ज़ीरो पर पहुँचा नहीं पा रहा। "सदाचार", "राष्ट्रवाद" और "संस्कृति" की दुहाई देने वाली भाजपा का भ्रष्टाचार भी "राष्ट्रवादी" होता है। इसलिए अडानी के भ्रष्टाचार पर कार्रवाई की माँग "देश-विरोधी" है। " न खाऊँगा, न खाने दूँगा" तो जुमला था, असल नारा तो "ख़ुद अकेला खाऊँगा, दोस्तों को खिलाऊँगा" है!

नया साल मज़दूर वर्ग के फ़ासीवाद-विरोधी प्रतिरोध और संघर्षों के नाम!

(पेज 1 से आगे)

माहौल तैयार करने की पिछले कुछ महीनों के दौरान ही भाजपा व संघ परिवार द्वारा की गयी साज़िशों से फ़ासीवादियों के इरादे साफ़ हो चुके हैं। नीतीश कुमार व चन्द्रबाबू नायडू इन हरक़तों पर बोलने के लिए मुँह खोलें इससे पहले ही उनके मुँह में उनके राज्यों के लिए 'विशेष पैकेज' की गड्डी ठूँस दी जाती है ताकि वे अपने-अपने राज्यों में अपनी क्षेत्रीय राजनीति चमका सकें, हालाँकि इससे भी ज़्यादा फ़ायदा अन्त में भाजपा को ही मिलता है। फिर भी न मानें तो ईडी, सीबीआई आदि का और संघ परिवार के काडर-आधारित ढाँचे का डर तो है ही जिसे दिखाकर नायडू और नीतीश जैसों की बाँह मरोड़ी जा सकती है।

हमने लोकसभा चुनावों के नतीजे आने के बाद ही स्पष्ट किया था कि मोदी के नेतृत्व में बनी एनडीए की गठबन्धन सरकार के दौरान क्या नहीं बदलेगा: पहला, मज़दूरों के हक़ों पर हमले, जो कि सरकार बनने के तत्काल बाद ही नये लेबर कोड्स को लागू कर देने की तैयारियों से स्पष्ट हो जाता है; दूसरा, जनता के जनवादी व नागरिक अधिकारों पर हमले, जो मोदी सरकार के नये कार्यकाल में नयी फ़ासीवादी दण्ड संहिताओं के लागू होने और उसके बाद से तमाम मज़दूर वर्ग के राजनीतिक कार्यकर्ताओं, जनपक्षधर जनवादी व नागरिक अधिकार कार्यकर्ताओं व पत्रकारों, वक़ीलों आदि पर मुकदमे ठोंकने, उनकी हत्याएँ करने और उन पर हमले करवाने की फ़ासीवादी कार्रवाइयों से स्पष्ट हो गया; तीसरा, मुसलमानों के विरुद्ध साम्प्रदायिकता की लहर को और भी ज़्यादा भड़काने की कार्रवाइयाँ जो मोदी सरकार के तीसरे कार्यकाल में सम्भल और अजमेर शरीफ़ तक की घटनाओं से स्पष्ट हो जाता है; और चौथा, नवउदारवादी जन-विरोधी और पूँजीपरस्त नीतियों को पहले से भी तेज़ रफ्तार से लागू करना क्योंकि यह इस समय समूचे पूँजीपति वर्ग की ज़रूरत है और सभी अन्य पूँजीवादी चुनावबाज़ दलों की इस पर मोटी सहमति है, जैसा कि बिजली वितरण की समूची प्रक्रिया को चण्डीगढ़ से लेकर उत्तर प्रदेश तक में निजी हाथों में सौंपने से लेकर जनता के जल-जंगल-ज़मीन को मध्य भारत के इलाके में बड़े पूँजीपतियों को सौंपने के लिए आदिवासी मेहनतकश जनता के बढ़ते राजकीय दमन और क़त्ले-आम से स्पष्ट हो जाता है। मोदी सरकार के तीसरे कार्यकाल का एक साल पूरा होने से पहले ही ये बातें स्पष्ट तौर पर सामने आ चुकी हैं।

इतना स्पष्ट है कि चुनावी नतीजों के आधार पर ऐसे क़यास लगाना कि मोदी सरकार के मज़दूर-विरोधी और जन-विरोधी फ़ासीवादी हमलों में कोई कमी आने वाली है, भयंकर भूल होगी और यह सिद्ध भी हो चुका है।

इसके जवाब में क्या आम मेहनतकश जनता शान्त है? नहीं। ऐसा नहीं है। चाहे तमिलनाडु में सैमसंग के मज़दूरों की 37 दिन लम्बी चली हड़ताल हो, जो माकपा की केन्द्रीय ट्रेड यूनियन 'सीटू' की समझौतापरस्ती के कारण अपनी प्रमुख माँगों को पूरा करने से पहले ही समाप्त हो गयी; मारुति के अस्थायी मज़दूर यह सम्पादकीय लेख लिखे जाने के समय आन्दोलन की राह पर थे, हालाँकि उनके आन्दोलन के भीतर भी ऐसी विजातीय शक्तियाँ मौजूद हैं, जिनको उन्होंने परिधि पर नहीं पहुँचाया तो इस आन्दोलन का अन्त भी एक धीमी मौत मरने में हो सकता है। चण्डीगढ़ और उत्तर प्रदेश में बिजली के ख़िलाफ़ आन्दोलन से लेकर आँगनवाड़ीकर्मियों व अन्य स्कीम वर्करों के आन्दोलन तक, विशाखापत्तनम इस्पात संयंत्र के निजीकरण के विरुद्ध हुए संघर्ष से लेकर छात्रों-युवाओं के राष्ट्रीय शिक्षा नीति और एनटीए के विरुद्ध हुए संघर्षों तक, जनता स्वत:स्फूर्त तरीक़े से सड़कों पर उतरती रही, कभी-कभार कुछ आंशिक सफलता भी हासिल करती रही और अधिकांश मामलों में स्पष्ट राजनीतिक कार्यक्रम व नेतृत्व के अभाव में बिखरती भी रही। लेकिन इन स्वत:स्फूर्त संघर्षों से भी इतना तो साफ़ है कि जनता चुप नहीं बैठ गयी है और नही वह पीठ झुकाकर कोड़े खाने को तैयार है। जब भी उसका धीरज जवाब देता है, तो वह सड़कों पर उतरती है। पूरे 2024 में उत्तर से लेकर दक्षिण भारत तक और पश्चिमी से लेकर पूर्वी भारत तक जनता महँगाई, बेरोज़गारी, पहुँच से बाहर होती शिक्षा, चिकित्सा, आवास से आजिज़ आकर बार-बार आन्दोलन का रास्ता पकड़ती रही है। भाजपा की सीटों में गिरावट लोगों के असन्तोष को प्रदर्शित करने वाला एक अहम निशान था।

लेकिन दूसरी ओर यह भी सच है कि मज़दूर व मेहनतकश जनता समेत आम तौर पर जनता के जनसमुदाय स्वत:स्फूर्त संघर्षों के बूते ही हुक्मरानों के ख़िलाफ़ अपनी लड़ाइयाँ नहीं जीत पाते। एक देशव्यापी क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी के अभाव में जनता के तमाम संघर्ष कुछ समय के बाद बिखराव का शिकार हो जाते हैं, भले ही कभी-कभार उनकी कुछ मामूली माँगें मान भी ली जाएँ। एक क्रान्तिकारी पार्टी मज़दूर वर्ग के संघर्ष का मुख्यालय होता है। यह सर्वहारा वर्ग की हिरावल पार्टी ही होती है जो जनसमुदायों के बीच एक सही राजनीतिक लाइन के वर्चस्व को स्थापित करती है और सही राजनीतिक लाइन व नेतृत्व के बूते इन जनसमुदायों को वह शक्ति प्रदान करती है कि वे शासक पूँजीपति वर्ग से अपनी लड़ाइयों को एकजुट और संगठित तरीक़े से लड़ सकते हैं और न सिर्फ़ अपनी तात्कालिक माँगों के संघर्षों को प्रभावी तरीक़े से चला सकते हैं, बल्कि समूची पूँजीवादी राज्यसत्ता का ध्वंस कर पूँजीवादी व्यवस्था का नाश करने के अपने दूरगामी ऐतिहासिक लक्ष्य को भी पूरा कर सकते हैं। 2024 ने एक बार फिर हम मज़दूरों-मेहनतकशों के सामने एक ऐसी क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी के निर्माण के प्रधान कार्यभार को स्पष्ट कर दिया है। आज यह कार्यभार इसलिए भी अहम हो गया है कि फ़ासीवादी निज़ाम के हमलों का प्रभावी प्रतिरोध भी ऐसी पार्टी के अभाव में संगठित नहीं किया जा पा रहा है। 'मज़दूर बिगुल' ऐसी पार्टी के निर्माण की मुहिम का ही एक हिस्सा है। इस मुहिम से सभी मज़दूर-मेहनतकश भाई-बहन को जुड़ना चाहिए। यह हमारे नये वर्ष का मज़दूर संकल्प होना चाहिए।

हमारे देश में बीते साल मोदी-शाह सरकार द्वारा कश्मीर से लेकर उत्तर-पूर्व के कुछ राज्यों तक में दमित राष्ट्रों के दमन में और भी ज़्यादा तीव्रता आयी। मणिपुर के हालात से हम वाक़िफ़ है। मैतेयी और कुकी- दो समुदायों के बीच जातीय व साम्प्रदायिक हिंसा के फलस्वरूप लगभग 300 लोग अपनी जानें गवाँ चुके हैं और हिंसा अभी भी पूरी तरह से थमी नहीं है। यह पूरा मोदी-शाह सरकार और संघ परिवार के कुकर्मों का ही नतीजा था। हर जगह संघ परिवार समाज में मौजूद विभाजन की रेखाओं को देखता है और उसे आधार बनाकर जनता को बाँटने के लिए फ़िरकापरस्त और दंगाई माहौल तैयार करता है, ताकि पूरे सामाजिक ताने-बाने को तहस-नहस कर जनता को निशस्त्र और अशक्त बना दिया जाये। क्यों? क्योंकि पूँजी के हितों की सेवा के लिए जनता को तोड़ देना ज़रूरी होता है और फ़ासीवादियों से बेहतर यह काम कोई नहीं कर सकता है। साथ ही, मणिपुर के राष्ट्रीय दमन को बढ़ावा देने और उसके जन-प्रतिरोध को नष्ट कर देने में भी यह संघी फ़ासीवादियों के लिए उपयोगी साबित होगा। कश्मीर में जनता का अकथनीय दमन पहले के ही समान जारी है और उसकी आकांक्षाओं को फौजी बूटों तले रौंदने का काम फ़ासीवादी सरकार पहले की पूँजीवादी सरकारों से बेहतर तरीक़े से करती रही है। लेकिन राष्ट्रीय दमन के विरुद्ध दशकों से जारी ये संघर्ष कभी तीव्र तो कभी मद्धम गति से जारी ही रहेंगे। वे अगर जीत नहीं सकेंगे तो वे हारेंगे भी नहीं।

सर्वहारा वर्ग हर प्रकार के दमन और उत्पीड़न का विरोध करता है, चाहे वह हमारे देश के शासक वर्ग द्वारा किसी राष्ट्र या राष्ट्रीयता का ही क्यों न हो। जो सर्वहारा वर्ग अपने देश के पूँजीपति वर्ग द्वारा दमित कौमों के दमन के विरुद्ध नहीं लड़ता, वह ख़ुद भी अपने देश के पूँजीपति वर्ग के हाथों शोषित और उत्पीड़ित होने के लिए अभिशप्त होता है। सर्वहारा वर्ग के महान शिक्षक कार्ल मार्क्स ने बताया था कि ब्रिटिश मज़दूर वर्ग की राजनीतिक अक्षमता के सबसे प्रमुख कारणों में से एक यह था कि वह ब्रिटिश पूँजीपति वर्ग के द्वारा आयरलैण्ड को गुलाम बनाये जाने और उसके राष्ट्रीय दमन पर एक क्रान्तिकारी अवस्थिति अपनाने में नाक़ाम रहा था। तमाम साम्राज्यवादी देशों में मज़दूर वर्ग अपने देश के शासक वर्ग के हाथों अन्धराष्ट्रवाद के हाथों ठगा जाता रहा और उनके साम्राज्यवादी मंसूबों को पूरा करने में उनकी मदद कर उनकी शक्ति को बढ़ाता रहा। यानी, अपने दुश्मन की ताक़त को ही बढ़ाता रहा। जब हम भी अन्धराष्ट्रवाद की लहर में बहकर, मिसाल के तौर पर, कश्मीर की जनता को फौजी बूटों तले रौंदे जाने की हिमायत करते हैं, तो हम अपने देश के पूँजीपति वर्ग, मालिकों-धन्नासेठों का हाथ मज़बूत कर रहे होते हैं, यानी अपने ही दुश्मनों के हाथों का खिलौना बन जाते हैं। नतीजतन, हम स्वयं उनके हाथों लुटने और दबाये जाते रहने के लिए अभिशप्त हो जाते हैं।

इसीलिए सर्वहारा वर्ग के एक अन्य महान शिक्षक लेनिन ने बताया था कि मज़दूर वर्ग सभी राष्ट्रों के आत्मनिर्णय के अधिकार का बिना शर्त समर्थन करता है। वह साझा सहमति, जनवाद और बराबरी पर बने अधिकतम बड़े राज्य और देश का पक्षधर होता है, लेकिन ऐसी एकता ज़ोर-ज़बर्दस्ती के आधार पर नहीं बन सकती है। वह केवल जनवाद और समानता के आधार पर ही बन सकती है। जब सर्वहारा वर्ग ने रूस में सभी दमित कौमों मसलन जॉर्जियाई, यूक्रेनी, अजरबैज़ानी, आर्मेनियाई, आदि को कौमी आज़ादी का हक़ दिया, तो कुछ ही समय में ये राष्ट्र स्वयं समाजवादी सोवियत गणराज्य में शामिल हो गये। हम किसी भी राष्ट्र के अलग होने का समर्थन नहीं करते, हम उनके *अलग होने के अधिकार* का समर्थन करते हैं। इन दोनों में उसी प्रकार फ़र्क है जैसे कि तलाक का समर्थन करने और तलाक के अधिकार का समर्थन करने में। हम सभी वैवाहिक जोड़ों के बीच तलाक का समर्थन नहीं करते और न ही ऐसी कामना करते हैं। लेकिन हम उनके तलाक व अलग होने के अधिकार का समर्थन करते हैं, जो कि किसी का भी जनवादी अधिकार है। इस जनवादी अधिकार का समर्थन करके ही सर्वहारा वर्ग एक सही क्रान्तिकारी अवस्थिति को अपना सकता है और अपने शोषक और शत्रु पूँजीवादी शासक वर्ग को सही मायने में चुनौती दे सकता है।

यही वजह है कि आज दुनिया के पैमाने पर हो रही साम्राज्यवादी-पूँजीवादी बर्बर दमन की सबसे अभूतपूर्व और प्रातिनिधिक घटना पर भी भारत के मज़दूरों-मेहनतकशों को अपनी जानकारी बढ़ानी होगी और दमित-उत्पीड़ित जनता के पक्ष में खड़े होना होगा। हम यहाँ फ़लस्तीन की बात कर रहे हैं, जिसकी जनता के ख़िलाफ़ साम्राज्यवादी अमेरिका और मध्य-पूर्व में उसका भाड़े का लठैत ज़ायनवादी इज़रायल एक ऐसे हत्याकाण्ड को अंजाम दे रहे हैं, जिसकी कोई मिसाल इतिहास में ढूँढ पाना मुश्किल है।

हमारे देश के फ़ासीवादी फ़लस्तीन के मसले को भी हिन्दू-मुसलमान का मसला बनाने की कोशिश करते हैं। लेकिन वास्तव में इसका मुसलमान पहचान या किसी साम्प्रदायिक मसले से कोई रिश्ता नहीं है। यह वास्तव में फ़लस्तीन की जनता की पश्चिमी साम्राज्यवाद की शहर पर किये गये ज़ायनवादी कब्ज़े के ख़िलाफ़ राष्ट्रीय मुक्ति की लड़ाई है, जो पिछले सात दशकों से भी ज़्यादा समय से जारी है। फ़लस्तीन की जनता में मुसलमानों के अलावा फ़लस्तीनी यहूदी व ईसाई भी शामिल हैं, जो इज़रायली-अमेरिकी कब्ज़े के ख़िलाफ़ लड़ रहे हैं। यह भी समझना ज़रूरी है कि इज़रायल कोई देश या राष्ट्र नहीं है, बल्कि एक औपनिवेशिक परियोजना है, जिसे पश्चिमी साम्राज्यवाद के बल पर चलाया जाता रहा है। साथ ही, इज़रायल का यहूदी लोगों से भी कोई लेना-देना नहीं है। उल्टे दुनिया भर की यहूदी जनता का बड़ा हिस्सा आज इज़रायल के ख़िलाफ़ खड़ा है और फ़लस्तीन का समर्थन करता है। भारत की शुरुआती दौर की विदेश नीति, विशेष तौर पर, इन्दिरा गाँधी के दौर तक की, फ़लस्तीन की आज़ादी का कम-से-कम औपचारिक तौर पर समर्थन करती थी। भारत के पूँजीपति वर्ग के ही एक प्रतिनिधि होने के बावजूद महात्मा गाँधी ने भी फ़लस्तीन की आज़ादी का समर्थन किया था। लेकिन इन सच्चाइयों से भारत के मेहनतकश अवाम और छात्रों-युवाओं का बड़ा हिस्सा वाक़िफ़ नहीं है। सवाल धर्म या सम्प्रदाय का है ही नहीं, सवाल है इंसाफ़ और नाइंसाफ़ी का। फ़लस्तीन इंसाफ़ का हक़दार है, जिस अमेरिकी साम्राज्यवादी और इज़रायली ज़ायनवादी ख़ून के दलदल में डुबो देना चाहते हैं।

गज़ा में पिछले लगभग 13 महीनों में इज़रायल ने एक लाख से भी ज़्यादा लोगों का बर्बर क़त्लेआम किया है, जिसमें से 60 प्रतिशत औरतें और बच्चे हैं। योजनाबद्ध तरीक़े से एक हत्याकाण्ड को अंजाम दिया जा रहा है। हमें अपने देश में जल्द से जल्द इस हत्याकाण्ड के ख़िलाफ़ आवाज़ उठानी होगी और जनता को सच्चाई से वाक़िफ़ कराना होगा। हमें हमारे देश में इज़रायल से किसी भी रूप

(पेज 7 पर जारी)

दिल्ली विधानसभा के चुनावी मौसम में चुनावबाज़ पूँजीवादी पार्टियों को याद आया कि 'मज़दूर भी इन्सान हैं!'

(पेज 1 से आगे)

वाकई मज़दूरों की इतनी चिन्ता है तो वे वजीरपुर, बवाना, बादली के औद्योगिक एरिया में जाकर अपने पार्षदों-विधायकों और सदस्यों की फैक्टरियों व शोरूमों का निरीक्षण कर लें। आज भी दिल्ली की फैक्टरी, शो रूम, दुकानों में खुलेआम श्रम-कानूनों का उल्लंघन किया जाता है। सभी मज़दूर जानते है कि नियमित प्रकृति के कामों में ठेका मज़दूर कार्यरत है, न्यूनतम मज़दूरी से लेकर ओवर टाइम, सुरक्षा मानकों से लेकर बोनस आदि जैसे श्रम-कानून कहीं लागू नहीं होते है। यूँ तो अभी हाल में दिल्ली की मुख्यमन्त्री आतिशी ने 'कागजों पर' न्यूनतम वेतन में बढ़ोत्तरी की घोषणा की, जो अब लगभग 21 हजार के आस पास है। लेकिन आप ही बताइये दिल्ली में कितने मज़दूरों को आठ घण्टे काम के लिए 21 हजार वेतन मिल रहा है? मुश्किल से 7-8 प्रतिशत मज़दूरों को न्यूनतम वेतन मिलता है, जो आम तौर पर संगठित क्षेत्र के स्थायी कर्मचारी हैं।

दरअसल न्यूनतम वेतन बढ़ाने की घोषणा दिल्ली सरकार द्वारा आगामी विधान सभा चुनाव के मद्देनज़र फेंका गया एक जुमला ही है, क्योंकि असल में सरकार की मज़दूरों को न्यूनतम वेतन देने की कोई मंशा नहीं है। वैसे भी आप सरकार हर साल ही ऐसी बढ़ोत्तरियों का एलान करती है, लेकिन श्रम विभाग आदि को अनौपचारिक निर्देश है कि श्रम कानूनों को लागू करवाने का कोई प्रयास वह बिल्कुल न करे और कारखाना-मालिकों को बेरोक-टोक श्रम कानूनों का उल्लंघन करते हुए मज़दूरों का शोषण करने की पूरी आज़ादी मिले। कारण यह है कि आम आदमी पार्टी को चुनाव में चन्दा देने वाली एक बड़ी आबादी दिल्ली के छोटे-बड़े दुकानदारों, फ़ैक्टरी मालिकों और ठेकेदारों की है और ये वही जोंक है जो मज़दूरों खून चूसकर आपनी तिजोरियाँ भरते हैं। इसलिए इस चुनाव में मज़दूरों को इन छोटे पूँजीपतियों की सेवा करनी वाली आम आदमी पार्टी को भी सबक सिखाना चाहिए। सच है कि केवल चुनावी सबक सिखाने से मज़दूरों का लक्ष्य पूरा नहीं होने वाला है। उसके लिए अपने श्रम अधिकारों के लिए हम मज़दूरों को एक जुझारू जनान्दोलन सड़कों पर खड़ा करना होगा और व्यापक हड़ताल की ओर जाना होगा।

अब आते हैं भाजपा के मज़दूर की झुग्गियों-बस्तियों के दौरों पर।

इस बार चुनावी दंगल में भाजपा मज़दूर आबादी को भी अपने झाँसे में लेने के लिए तीन-तिकड़में कर रही है। भाजपा नेता वोट की फसल काटने के लिए मज़दूरों की झुग्गी-बस्तियों में जाकर प्रवास कर रहे हैं। पहले इन बेशर्म भाजपा नेताओं से मज़दूरों को पूछना चाहिए कि 2022 तक मोदी सरकार ने वादा किया था कि 'जहाँ झुग्गी वहीं मकान', उसका क्या हुआ? हुआ यह कि दिल्ली में पिछले तीन सालों में ही आधा दर्जन झुग्गी-बस्तियाँ उजड़ गयीं। तब ये भाजपा नेता कहाँ ग़ायब थे? आज भाजपा मज़दूर बस्तियों की नारकीय परिस्थितियों को मुद्दा बना रही है, लेकिन सवाल उठता है कि इन चुनावी मदारियों को हमेशा चुनाव से चन्द दिनों पहले ही मेहनतकश आबादी की बदहाली क्यों नज़र आती है? दूसरे, भाजपा इन बस्तियों में रहने वाले मज़दूरों के काम की स्थितियों, उनके श्रम अधिकारों के हनन या शोषण पर सवाल नहीं उठाती क्योंकि मज़दूर जिन फैक्टरी, शो-रूमों में काम करते है, उसके मालिक खुद भाजपा के समर्थक है और इन मालिकों के चन्दे से भाजपा चुनावी प्रचार करती है। वैसे भी सभी श्रम अधिकारों को समाप्त करने वाले नये लेबर कोड लाने वाली भाजपा इन मुद्दों पर बात कैसे कर सकती है?

असल में भाजपा मज़दूर बस्तियों में भी साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण करके वोट हासिल करना चाहती है। दिल्ली चुनाव में भाजपा महँगाई, बेरोजगारी जैसे मुद्दों को छोड़कर 'ना बँटेंगे-ना कटेंगे' जैसे नफ़रती नारे को उछल रही है, जिसका मक़सद है हिन्दू और मुसलमान मज़दूरों के बीच नफ़रत की दीवार खड़ी करना, जबकि इन मज़दूरों की साझी दुश्मन स्वयं मौजूदा मोदी-शाह सरकार और आम तौर पर समूची पूँजीवादी व्यवस्था है, जो मज़दूरों का ख़ून निचोड़कर धन्नासेठों की तिजोरियाँ भरने की एक ऐसी व्यवस्था है, जो धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं करती। अम्बानी-अडाणी और इन इजारेदार पूँजीपतियों के नेतृत्व के मातहत खड़े समूचे पूँजीपति वर्ग की सेवक भाजपा मज़दूरों की 'दुश्मन नम्बर एक' पार्टी है। इसलिए हम मज़दूरों को भाजपा व संघ परिवार के असली फ़ासीवादी एजेण्डे को पहचानना होगा। हम अपने धर्म पर अलग-अलग हो सकते हैं, लेकिन राजनीति पर हम एक हैं, हमारे हित राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक तौर पर एक हैं। जैसा कि हमारे महान शहीद भगतसिंह ने कहा था, हमें धर्म को पूरी तरह से निजी मसला मानना चाहिए, इसका हमारी राजनीति से कोई रिश्ता नहीं है। हमें समझना होगा कि हमारे असली मुद्दे रोज़गार, महँगाई, शिक्षा, स्वास्थ्य और आवास के हैं। ये ही वे मुद्दे हैं जो सीधे हमारी ज़िन्दगी से जुड़ते हैं। इसलिए इस चुनाव में मज़दूर बस्तियों, कॉलोनियों में दौरा कर रहे इन नफ़रती भाजपा नेताओं का बहिष्कार जनता को करना चाहिये और इन्हें अपने इलाकों से सेवा-सत्कार कर खदेड़ना चाहिए। ये हमें धर्म के नाम पर बाँटकर वास्तव में धन्नासेठों को ही बचाते हैं और उनकी सेवा करते हैं।

अब दो बातें पूँजीपतियों की पुरानी पार्टी कांग्रेस के बारे में।

पूँजीपतियों की पुरानी पार्टी कांग्रेस भी दिल्ली की सत्ता में वापस आने के ज़ोर-आज़माइश में लगी हुई है। दिल्ली में 2014 में केजरीवाल की सरकार के आने के पहले (जिसमें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने अपने प्यादे और सेवक अन्ना हज़ारे के ज़रिये बड़ी भूमिका निभायी थी) कांग्रेस की सरकार लगभग 15 साल रही, तत्कालीन मुख्यमन्त्री शीला दीक्षित का न्यूनतम मज़दूरी बढ़ाना एक हवाई घोषणा ही होता था। तब भी दिल्ली की मज़दूर आबादी शोषण और अन्याय भरी ज़िन्दगी जीने को मजबूर थी। अब चुनाव आने पर कांग्रेस द्वारा निकाली जा रही ' दिल्ली न्याय यात्रा' एक ढोंग से ज्यादा कुछ नहीं है। यह भूलना नहीं चाहिए कि ठेकाकरण को बढ़ावा देने वाली निजीकरण और उदारीकरण की नीतियों की शुरुआत देश में कांग्रेस सरकार ने ही 1991 में की थी। आज भी कुछ राज्यों में जो कांग्रेसी सरकारें मौजूद हैं, वे देश के पूँजीपतियों और धन्नासेठों की सेवा करने में अपनी ओर से कोई कसर नहीं छोड़ती हैं।

मेहनतकशों-मज़दूरों के इस भयंकर शोषण के ख़िलाफ़ क्या ये चुनावबाज़ पार्टियाँ असल में कोई क़दम उठायेंगी? नहीं। क्यों? क्योंकि ये सभी पार्टियाँ दिल्ली के कारखाना-मालिकों, ठेकेदारों, बड़े दुकानदारों और बिचौलियों के चन्दों पर ही चलती हैं। अगर करावलनगर, बवाना, वज़ीरपुर, समयपुर बादली औद्योगिक क्षेत्र से लेकर खारी बावली, चाँदनी चौक या गाँधी नगर जैसी मार्किट में 12-14 घण्टे काम करने वाले मज़दूरों का भंयकर शोषण वही मालिक या व्यापारी कर रहे हैं जो 'आप' 'भाजपा' या 'कांग्रेस' के व्यापार प्रकोष्ठ और उद्योग प्रकोष्ठ में भी शामिल हैं और इन्हीं के चन्दों से चुनावबाज पार्टियाँ अपना प्रचार-प्रसार करती है। साफ़ है कि ये पार्टियों अपने सोने के अण्डे देने वाली मुर्गी के खिलाफ़ मज़दूर हितों के लिए कोई संघर्ष चलाना दूर इस मुद्दे पर एक शब्द भी नहीं बोलने वालीं।

इसलिए दिल्ली के सभी मज़दूर-मेहनतकशों को ध्यान रखना है कि आगामी दिल्ली विधानसभा चुनाव में अमीरों, धन्नासेठों, पूँजीपतियों की चुनावबाज पार्टियों (भाजपा, आप, कांगेस व अन्य) का पिछलग्गू नहीं बनना है। बल्कि शिक्षा,स्वास्थ्य, रोजगार, आवास और जनता के अन्य अधिकारों के लिए और मँहगाई, बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता और मेहनतकश जनता की लूट के ख़िलाफ़ मेहनतकश जनता का क्रान्तिकारी पक्ष मजबूत करना है। 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' (RWPI) एक ऐसी पार्टी है जिसे स्वयं मज़दूरों और मज़दूर वर्ग के राजनीतिक संगठनकर्ताओं ने खड़ा किया है। इस पार्टी का उद्देश्य मज़दूर वर्ग के अन्तिम लक्ष्य यानी कि मज़दूर सत्ता और समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के लिए काम करना है। इस लम्बी लड़ाई के एक अंग के तौर पर पूँजीवादी चुनावों में भी पार्टी रणकौशलात्मक हिस्सेदारी करती है ताकि मज़दूरों और आम मेहनतकश आबादी के स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष को खड़ा किया जा सके और उनके वर्ग हितों को मज़बूती से पेश किया जा सके। आम मेहनतकश जनता का एकमात्र विकल्प RWPI है। पूँजीवादी व्यवस्था के दायरे के भीतर मज़दूरों के तमाम श्रम अधिकारों व जनवादी-नागरिक अधिकारों में जो भी हासिल हो सकता है वह RWPI के नेतृत्व में संघर्ष के ज़रिये ही हो सकता है। लेकिन RWPI का मक़सद केवल चुनाव के ज़रिये जनता के लिए महज़ कुछ सुधार हासिल करना नहीं है। RWPI का अन्तिम लक्ष्य है एक ऐसी व्यवस्था क़ायम करना जिसमें उत्पादन, राज-काज और समाज के ढाँचे पर उन वर्गों का हक़ और नियन्त्रण हो, जो हर वस्तु और सेवा का प्रत्यक्ष रूप में और सामूहिक तौर पर उत्पादन करते हैं, चाहे वे खेतों-खलिहानों में करते हों, कल-कारखानों में करते हों या फिर खानो-खदानों व तमाम दफ्तरों, कार्यालयों में करते हों। इस दूरगामी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ही पूँजीवादी चुनावों में मेहनतकश जनता के स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष का निर्माण करना एक क़दम मात्र है। इस क़दम के ज़रिये भी असली लक्ष्य मेहनतकश जनता को उसके वर्ग हितों के बारे में सचेत करना, और संघर्ष करने के लिए संगठित करना है। इसलिए आने वाले चुनावों में दिल्ली में हम मेहनतकशों-मज़दूरों को मज़दूर पार्टी यानी RWPI के साथ मज़बूती से एकजुट और संगठित होना चाहिए।

नया साल मज़दूर वर्ग के फ़ासीवाद-विरोधी प्रतिरोध और संघर्षों के नाम!

(पेज 6 से आगे)

में रिश्ता रखने वाली हर कम्पनी, संगठन, विश्वविद्यालय, सरकारी या ग़ैर-सरकारी उपक्रम का पूरा बहिष्कार करने की मुहिम छेड़नी चाहिए, भारत सरकार पर इज़रायल से हर प्रकार के सम्बन्ध समाप्त करने की माँग उठानी चाहिए ताकि जारी क़त्लेआम को रोकने के लिए अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर व्यापक मेहनतकश जनता द्वारा बनाये जा रहे दबाव को बढ़ाया जा सके। यह भी 2025 में हमारा एक महत्वपूर्ण कार्यभार होना चाहिए। यह भारत के सर्वहारा वर्ग का अन्तरराष्ट्रीयतावादी कर्तव्य है। दुनिया के अधिकांश देशों में सर्वहारा वर्ग यह फ़र्ज़ निभा रहा है, लेकिन हम इसके बारे में अभी पर्याप्त चेतना के अभाव में पीछे हैं। यह कमी इस साल हमें दूर करनी होगी।

यह सच है कि बीता साल भी पूरी दुनिया में मेहनतकश अवाम के लिए प्रतिक्रिया और पराजय के अन्धकार में बीता है। लेकिन हमें याद रखना चाहिए कि कुछ भी स्थायी नहीं होता। यह समय पस्तहिम्मती का नहीं, बल्कि अपनी हार से सबक लेकर उठ खड़े होने का है। रात चाहे कितनी ही लम्बी क्यों न हो, सुबह को आने से नहीं रोक सकती। इस नये साल हमें सूझबूझ, जोशो-ख़रोश और ताक़त के साथ गोलबन्द और संगठित होने को अपना नववर्ष का संकल्प बनाना होगा। फ़ासीवाद के ख़िलाफ़, साम्राज्यवाद-पूँजीवाद के ख़िलाफ़, हर रूप में शोषण, दमन और उत्पीड़न के ख़िलाफ़ समूची मेहनतकश जनता को संगठित करने के काम को नये सिरे से, रचनात्मक तरीक़े से अपने हाथों में लेना होगा। 'मज़दूर बिगुल' की तरफ़ से हम सभी मेहनतकश साथियो, भाइयों-बहनों को ललकारते हैं:

बजा बिगुल मेहनतकश जाग
चिंगारी से लगेगी आग!

पाँच दिवसीय सातवीं अन्तरराष्ट्रीय अरविन्द स्मृति संगोष्ठी हैदराबाद में सम्पन्न हुई!

फ़ासीवाद की सही समझ के साथ इसके विरुद्ध संघर्ष तेज़ करने का संकल्प

● बिगुल संवाददाता

गत 29 दिसम्बर 2024 से 2 जनवरी 2025 के बीच 'इक्कीसवीं सदी में फ़ासीवाद: निरन्तरता और परिवर्तन के तत्व और समकालीन सर्वहारा रणनीति का प्रश्न' विषयक सातवीं अन्तरराष्ट्रीय अरविन्द स्मृति संगोष्ठी हैदराबाद में सम्पन्न हुई। अरविन्द स्मृति न्यास द्वारा आयोजित इस संगोष्ठी में 400 से अधिक लोगों ने भागीदारी की। इस संगोष्ठी में कई कम्युनिस्ट संगठनों, समूहों, राजनीतिक कार्यकर्ताओं, मार्क्सवादी बुद्धिजीवी, शोधार्थियों व लेखकों के अतिरिक्त बड़ी संख्या में छात्रों-युवाओं ने भागीदारी की। संगोष्ठी में न सिर्फ़ देश के विभिन्न हिस्सों से, बल्कि नेपाल, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, जर्मनी आदि देशों से भी लोगों ने भागीदारी की। इस संगोष्ठी में आयोजकों की ओर से पाँच आलेखों सहित कुल 10 आलेख प्रस्तुत किये गये। विभिन्न संगठनों, समूहों व व्यक्तियों ने अपनी समझदारी साझा करते हुए बहस-मुबाहिसे में हिस्सेदारी की तथा पाँच दिनों तक राजनीतिक विचार-विमर्श का सिलसिला जारी रखा।

हमारे देश के कम्युनिस्ट आन्दोलन में फ़ासीवाद की समझदारी को लेकर आम तौर पर काफ़ी विभ्रम मौजूद हैं। कई संगठन और समूह बीसवीं सदी के फ़ासीवाद के हूबहू दोहराव की अपेक्षा कर रहे हैं तो कई आज मौजूदा सत्ता को फ़ासीवादी कहते हैं मगर उनमें फ़ासीवाद की स्पष्ट समझदारी की कमी है और वे फ़ासीवाद से लड़ने के लिए बीसवीं सदी में अपनायी गयी रणनीतियों से आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं। ऐसे में, भारत के कम्युनिस्ट आन्दोलन में अरविन्द स्मृति न्यास द्वारा आयोजित यह संगोष्ठी एक पथ प्रदर्शक के तौर पर उन तमाम लोगों के लिए मददगार है जो फ़ासीवाद को समझने और उसके ख़िलाफ़ सही सर्वहारा रणनीति बनाने के काम में जुटे हुए हैं।

संगोष्ठी के पहले दिन की शुरुआत **साथी अरविन्द** और **साथी मीनाक्षी** की तस्वीरों पर माल्यार्पण करते हुए क्रान्तिकारी नारों और गीतों के साथ हुई। उसके पश्चात अरविन्द स्मृति न्यास की ओर से कॉमरेड **सत्यम** ने अरविन्द स्मृति न्यास का एक संक्षिप्त परिचय दिया और इसके आयोजन की ज़रूरत पर अपनी बात साझा की। उन्होंने कहा कि संगोष्ठी का आयोजन एक ऐसे समय में हो रहा है जब दुनिया भर में आर्थिक मन्दी के मद्देनज़र धुर-दक्षिणपन्थी ताक़तों का उभार देखने को मिल रहा है। फ़ासीवाद इस धुर-दक्षिणपन्थी प्रतिक्रिया का एक विशिष्ट रूप होता है। आज के फ़ासीवाद की विशिष्टता को समझते हुए उसके विरुद्ध कारगर सर्वहारा रणनीति व आम रणकौशल विकसित करने का काम केन्द्रीय महत्व रखने वाला बुनियादी राजनीतिक मसला है। इस बेहद ज्वलन्त और जीवन्त मुद्दे पर तफ़सील से और तसल्ली से बातचीत, विचार-विमर्श और बहस-मुबाहिसे के मक़सद से सातवीं अन्तरराष्ट्रीय अरविन्द स्मृति संगोष्ठी का आयोजन किया जा रहा है। साथ ही उन्होंने अब तक आयोजित छह अरविन्द स्मृति संगोष्ठियों का एक संक्षिप्त परिचय दिया, अरविन्द मार्क्सवादी अध्ययन संस्थान की पूरी परियोजना और अब तक इसके तहत हुई कार्यशालाओं, व्याख्यानों और प्रकाशनों का विवरण पेश किया। कॉमरेड सत्यम ने बहस-मुबाहिसे की मार्क्सवादी परम्परा और मार्क्सवाद के प्राधिकार को स्थापित करने की ज़रूरत को भी रेखांकित किया और आने वाले पाँच दिन तक प्रस्तुत किये जाने वाले आलेखों को आमन्त्रित किया।

संगोष्ठी के पहले दिन केन्द्रीय पेपर **"इक्कीसवीं सदी में फ़ासीवाद : निरन्तरता और परिवर्तन के तत्व"** को 'मज़दूर बिगुल' अख़बार के सम्पादक **अभिनव सिन्हा** द्वारा पेश किया गया। अपने आलेख में अभिनव ने उल्लेख किया कि फ़ासीवाद कोई सामान्य व साधारण धुर-दक्षिणपन्थी बुर्जुआ प्रतिक्रिया नहीं है बल्कि यह एक विशिष्ट प्रकार की धुर-दक्षिणपन्थी पूँजीवादी प्रतिक्रिया का रूप है जिसकी पहचान एक विशिष्ट प्रकार फ़ासीवादी विचारधारा, एक विशिष्ट क़िस्म के काडर आधारित संगठन और टुटपुँजिया वर्गों के एक संगठित प्रतिक्रियावादी आन्दोलन से होता है। उन्होंने फ़ासीवाद की सामान्य सार्वभौमिक चारित्रिक अभिलाक्षणिकताओं को स्पष्ट करते हुए उल्लेख किया कि फ़ासीवाद किस प्रकार धुर-दक्षिणपन्थी प्रतिक्रिया के अन्य रूपों से अलग है।

उन्होंने कहा कि साम्राज्यवाद के नवउदारवादी दौर में पूँजीवाद की कार्यप्रणाली में आने वाले बदलावों के साथ ही फ़ासीवादी उभार व फ़ासीवादी सत्ताओं की कार्यप्रणाली और अस्तित्व रूप में भी महत्वपूर्ण बदलाव आये हैं। आज फ़ासीवाद एक राजनीतिक प्रवृत्ति के रूप में एक आपदा समान "घटना" नहीं रह गया है बल्कि अब इसकी पहचान लम्बे ऊष्मायन काल (long incubation period) से होती है। चूँकि आज पूँजीवादी आर्थिक संकट एक दीर्घकालिक व चिरकालिक स्वरूप ग्रहण कर चुका है इसलिए फ़ासीवादी प्रतिक्रिया भी समाज में एक दीर्घकालिक परिघटना में तब्दील हो चुकी है। इस दौरान फ़ासीवाद समाज में अपनी उपस्थिति बनाये रखते हुए सेना, नौकरशाही, न्यायपालिका समेत राज्यसत्ता के विभिन्न निकायों में अपनी घुसपैठ को उत्तरोत्तर बढ़ाता है यानी राज्यसत्ता में गहरी घुसपैठ करता है और समाज में आणविक व्याप्ति को अंजाम देता है, पूँजीवादी आर्थिक संकट के कारण पैदा होने वाली टुटपुँजिया वर्गों की अन्धी प्रतिक्रिया के सामने किसी विचारणीय आकार की अल्पसंख्यक आबादी को एक नकली दुश्मन के रूप में खड़ा करता है ताकि उसके सामने से असली शत्रु को दृष्टिओझल किया जा सके, फ़ासीवाद अपना विरोध करने वाली हर शक्ति को "राष्ट्र के शत्रु" के रूप में चित्रित करता है और फ़ासीवादी नेता या नेतृत्व को बहुसंख्यक समुदाय के अकेले प्रतिनिधि और प्रवक्ताके रूप में पेश करता है। वह फ़ासीवादी टुटपुँजिया प्रतिक्रिया को संगठित रूप देकर उसे ख़ास तौर पर बड़ी पूँजी और आम तौर पर पूँजी की सेवा में लगा देता है।

इस प्रकार एक निरंकुश शासन के ज़रिये फ़ासीवाद पूँजीपति वर्ग को मुनाफ़े की गिरती दर के संकट से उबारने का हर सम्भव प्रयास करता है। अभिनव ने उल्लेख किया कि आज के दौर में पूँजीवादी जनवाद के रूप यानी बहुदलीय संसदीय जनवाद की अन्तर्वस्तु इस क़दर खोखली हो चुकी है कि बीसवीं सदी के जर्मन व इतालवी फ़ासीवाद के समान आज के दौर में फ़ासीवाद को पूँजीवादी जनवाद के इस रूप/खोल को त्यागने की आम तौर पर कोई आवश्यकता नहीं है। वह अपने सारतत्व से खोखले हो रहे इस रूप, यानी संसद, चुनाव आदि की मौजूदगी के साथ वह सबकुछ कर सकता है, जो बीसवीं सदी के फ़ासीवाद ने किया था। अभिनव ने अपने आलेख में फ़ासीवाद से मुक़ाबले के लिए संघर्ष के विभिन्न रूपों को रेखांकित किया और सदन के सामने कुछ विशेष कार्यभार पेश किये। अभिनव के आलेख के अन्त में सवाल-जवाब का लम्बा सत्र चला। इस सत्र में सदन में मौजूद अध्येताओं और राजनीतिक कार्यकर्ताओं ने बेहद सक्रिय भागीदारी दिखायी।

सदन के सवालों का जवाब देते हुए अभिनव बताया कि दुनिया के कम्युनिस्ट आन्दोलन के अन्दर किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया को असावधान तरीके से फ़ासीवाद का नाम देने की एक प्रवृत्ति रही है। वजह यह कि फ़ासीवाद की विशिष्टता को समझने का एक अभाव रहा है और इसके बग़ैर फ़ासीवाद के विरुद्ध कोई कारगर सर्वहारा रणनीति व आम रणकौशल विकसित करने का काम पूरा नहीं किया जा सकता है।

जो लोग फ़ासीवाद की सार्वभौमिक विशिष्टताओं को पहचानते हैं, उनके सामने यह प्रश्न है कि क्या बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में पैदा हुए फ़ासीवादी व नात्सीवादी आन्दोलनों व सत्ताओं के मुक़ाबले आज के दौर के फ़ासीवादी उभार व सत्ता में कोई अन्तर है? क्या आज की फ़ासीवादी शक्तियाँ, उनके जीवन-रूप, उनकी कार्यप्रणाली, आज का फ़ासीवादी आन्दोलन, आज उसके सत्तारोहण के तरीक़े, उनकी ताक़त में हम परिवर्तन के तत्व देखते हैं? या हम आज के फ़ासीवादी उभारों में भी बीसवीं सदी के फ़ासीवादी प्रयोगों की प्रतिलिपि को देखते हैं? हमारे देश में मोदी-शाह सत्ता को और 1980 के दशक के मध्य से लम्बी प्रक्रिया में जारी सत्तारोहण को किस प्रकार देखते हैं? क्या मोदी-शाह की सत्ता महज़ 'नवउदारवादी पूँजी की तानाशाही है'? क्या वह महज़ 'सर्वसत्तावादी धार्मिक कट्टरपन्थी सत्ता' है? क्या वह केवल एक 'ऑटोक्रैटाइज़्ड सत्ता' है? या फिर वह एक फ़ासीवादी सत्ता है, एक नये प्रकार की फ़ासीवादी सत्ता जिसकी बीसवीं सदी की फ़ासीवादी सत्ताओं, शक्तियों, व आन्दोलनों से कुछ महत्वपूर्ण विशिष्ट भिन्नताएँ हैं?

इसके साथ ही उन्होंने बताया कि हमें पूरी दुनिया में हो रहे परिवर्तनों को भी समझना होगा। पिछली सदी में दुनिया जहाँ खड़ी थी आज उससे कहीं आगे जा चुकी है। विश्व पूँजीवाद की कार्यप्रणाली में, मन्दी की प्रकृति में, पूँजीवादी समाजों की वर्ग संरचनाओं में, बुर्जुआ राज्यसत्ता के काम करने के तौर-तरीके में कई महत्वपूर्ण बदलाव आये हैं जिसका प्रभाव फ़ासीवाद के उभार और उसके चरित्र पर पड़ा है। तुर्की, ब्राज़ील, फिलिप्पींस, रूस, मध्य-पूर्व क्षेत्र में, अमेरिका, ब्रिटेन या फ्रांस में जो परिवर्तन हो रहे हैं, उन्हें भी समझना ज़रूरी है। उन्होंने तुर्की में एर्दोआन, रूस में पुतिन, ब्राज़ील में बोल्सोनारो, अमेरिका में ट्रम्प, ईरान में खुमैनी-नीत क्रान्ति के बाद से अस्तित्वमान रही सत्ता के चरित्र के बारे में बात रखी और बोनापार्तवादी

(पेज 9 पर जारी)

फ़ासीवाद की सही समझ के साथ इसके विरुद्ध संघर्ष तेज़ करने का संकल्प

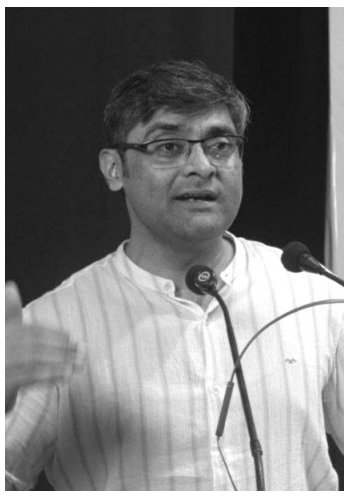

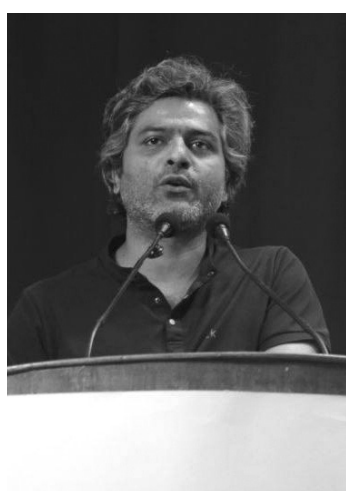

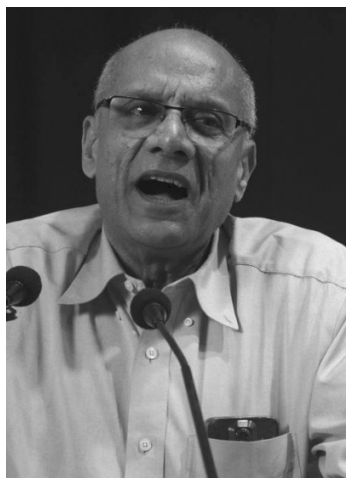

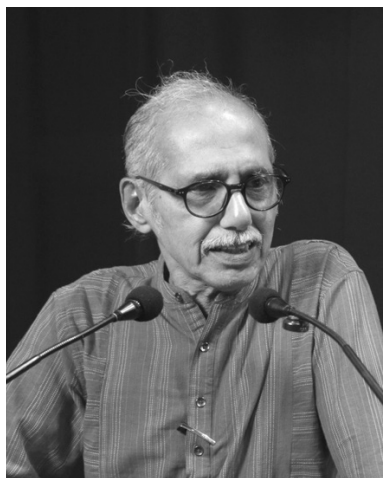

(पेज 8 से आगे)

सत्ता व फ़ासीवादी सत्ता में फ़र्क़ स्पष्ट करते हुए बताया कि फ़ासीवाद एक ख़ास प्रकार के राजनीतिक संकट यानी 'पावर ब्लॉक' के संकट की उत्पत्ति होता है जबकि बोनापार्टवाद 'सन्तुलन संकट' की अभिव्यक्ति होता है।

ऐसे में, फ़ासीवाद की आम या सार्वभौमिक विशिष्टताओं को पहचानना और 21वीं सदी में फ़ासीवाद की अभिलाक्षणिकताओं को समझना व अन्य धुर-दक्षिणपन्थी प्रतिक्रियाओं से उसकी अन्तरकारी विशिष्टता की पहचान करना महज़ कोई अकादमिक कवायद नहीं है, बल्कि आज के दौर में केन्द्रीय महत्व रखने वाला बुनियादी राजनीतिक सवाल है। इन सवालों पर विस्तार से बात रखते हुए उन्होंने कहा कि ऐसी बहसों के ज़रिये ही हम आज के सबसे जीवन्त व अव्यवहित राजनीतिक प्रश्न के समाधान की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं: यानी मौजूदा मोदी-शाह सत्ता के विरुद्ध एक सही क्रान्तिकारी रणनीति व आम रणकौशल को तैयार करने के काम में लग सकते हैं।

संगोष्ठी में दूसरे दिन उच्चतम न्यायालय के वरिष्ठ अधिवक्ता **कॉलिन गोंज़ाल्विस** ने **"फ़ासीवाद का उभार और क़ानून तथा न्यायपालिका का सवाल"** विषय पर अपनी बात रखी। कॉलिन गोंज़ाल्विस ने बताया कि किस तरह से समूची न्यायपालिका को फ़ासीवादी शक्तियों ने अन्दर से खोखला कर दिया है और लम्बी प्रक्रिया में उसका टेकओवर कर लिया है। हालिया कई फ़ैसलों की चर्चा करते हुए उन्होंने दिखलाया कि न्याययपालिका समेत पुलिस व नौकरशाही तक पर फ़ासीवादी ताक़तों ने अन्दर से कब्ज़ा किया है। उन्होंने बताया किस तरह पिछले 10 वर्षों के दौरान मोदी सरकार ने न्यायपालिका को एक तरह से ख़त्म ही कर दिया है और यह अभूतपूर्व है। स्वातन्त्र्योत्तर भारत में इसकी कोई मिसाल नहीं है। कॉलिन ने अनेक तथ्यों और घटनाओं के ज़रिये पुरजोर ढंग से इस बात को रखा कि मोदी सरकार ने आज लोकतन्त्र को भीतर से खोखला बना दिया है। तमाम लोकतान्त्रिक संस्थाओं का बस ढाँचा बचा रह गया है। उन्होंने न्यायपालिका में फ़ासीवादी घुसपैठ और लोकतन्त्र पर हमले के बारे में बहुत से ठोस उदाहरणों के साथ बेहद विचारोत्तेजक वक्तव्य दिया।

उसके बाद संगोष्ठी में सीपीआई (एमएल) रेड स्टार के **कॉमरेड पी.जे. जेम्स** के आलेख **'ग्लोबल नियो-फ़ासिज़्म इन्क्लूडिंग आरएसएस फ़ासिज़्म इन इण्डिया एण्ड एण्टी फ़ासिस्ट टास्क'** को **कॉमरेड मनसाया** ने प्रस्तुत किया और उसके बाद उस आलेख में प्रस्तुत फ़ासीवाद की समझ पर तीखी बहस भी हुई।

दूसरे दिन के दूसरे सत्र में आयोजकों की ओर से दूसरा आलेख **कॉमरेड आनन्द** ने प्रस्तुत किया जिसका शीर्षक था **'भारत में फ़ासीवाद का उभार : उत्पत्ति, विकास और वर्तमान अवस्था तथा प्रतिरोध की सर्वहारा रणनीति का प्रश्न'।** इस आलेख में भारत में फ़ासीवाद की विशिष्टता के बारे में विस्तार से उल्लेख करते हुए यह बताया गया कि भारत में फ़ासीवादी संगठन व फ़ासीवादी विचारधारा ब्रिटिश औपनिवेशिक काल में ही अस्तित्व में आ चुकी थी, परन्तु फ़ासीवादी आन्दोलन उसके कई दशकों बाद 1980 के दशक में जाकर अस्तित्व में आया। इस प्रकार भारत में फ़ासीवाद एक लम्बी ऊष्मायन अवधि (सुमित सरकार के शब्दों में लम्बी गर्भावस्था की अवधि) से होकर गुज़रा है जिस दौरान उसने समाज के पोर-पोर में एक प्रकार का आणविक व्याप्ति को अंजाम दिया है। अपने वजूद के पहले छह दशकों के दौरान वह ग्राम्शी के शब्दों में एक लम्बे अवस्थितिबद्ध युद्ध (war of positions) में संलग्न था। इस दौरान उसने समाज में विभिन्न किस्म की संस्थाएँ बनायीं जो आज संघ परिवार का हिस्सा हैं। सामाजिक, शैक्षिक और सुधार संस्थाओं का तानाबाना खड़ा करके अपने सामाजिक आधार को विस्तारित करना आरएसएस की दीर्घकालिक योजना का हिस्सा था। इस दौरान इसने राज्य उपकरण के सभी अंगों में गहरी घुसपैठ की।

1980 के दशक के मध्य तक आते-आते जब पब्लिक सेक्टर पूँजीवाद अपने संतृप्ति बिन्दु पर पहुँच रहा था और जब टटपुँजिया प्रतिक्रिया एक विचारणीय स्तर पर पहुँच चुकी थी। फ़ासीवादियों ने 1980 के दशक में पूँजीवादी संकट द्वारा मध्य वर्गों में पैदा हुई असुरक्षा का इस्तेमाल करते हुए वास्तविक वर्गीय अन्तरविरोधों को विचारधारात्मवक तथा राजनीतिक तौर पर एक ग़लत रूप और अभिव्यक्ति करके लोगों को राम मन्दिर के मुद्दे पर लामबन्दी किया। इसे भारत में फ़ासीवाद का पहला दौर कहा जा सकता है 1992 में बाबरी मस्जिद को ढहाये जाने के साथ यह आन्दोलन अपने चरम पर जा पहुँचा। 2002 में गुज़रात जनसंहार के रूप में भारतीय फ़ासीवाद ने अपना दूसरे दौरे को अंजाम दिया। इस दौरे से तथाकथित "हिन्दू हृदय सम्राट" नरेन्द्र मोदी के रूप में भारतीय फ़ासीवाद के फ़्यूहरर की परिघटना की शुरुआत हुई। 2004 से 2014 के बीच एक दशक के विराम काल में दो संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन (संप्रग) सरकारों के कार्यकाल के दौरान संघ परिवार ने सभ्य समाज में अपनी पैठ बनाये रखी, भले ही वह सरकारी सत्ता से बाहर था। आर्थिक संकट की परिस्थिति एवं 2010-11 से विशाल घपलों-घोटालों की वजह से कांग्रेस नीत संप्रग सरकार की बड़े पैमाने पर अलोकप्रियता के मद्देनज़र ऐसे हालात बने जिनमें 2010-11 और 2014 के बीच में भारतीय फ़ासीवाद ने कॉरपोरेट मीडिया की पूर्ण मिलीभगत से नरेन्द्र मोदी के पक्ष में पैदा किये गये प्रतिक्रियावादी उन्माद की बदौलत अपने तीसरे दौरे को अंजाम देने में कामयाबी हासिल की जब नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में भाजपा स्वततन्त्र भारत के इतिहास में पहली बार पूर्ण बहुमत के साथ सरकारी सत्ता तक पहुँची। उसके बाद से भारत के लोग एक फ़ासीवादी सत्ता के तहत जीने का दुस्वप्न झेल रहे हैं जिसने चुनावी व अन्य लोकतान्त्रिक प्रक्रियाओं एवं न्या यपालिका सहित अन्य संस्थाओं को नष्ट करके बुर्जुआ लोकतान्त्रिक अन्तर्वस्तु को अभूतपूर्व ढंग से तार-तार कर दिया है। आलेख के अन्त में फ़ासीवाद के ख़िलाफ़ प्रतिरोध खड़ा करने के मद्देनज़र सामान्य व विशिष्ट कार्यभारों का भी उल्लेख किया। आलेख की प्रस्तुति के बाद उस पर सवाल-जवाब व बहस-मुबाहिसे का सिलसिला तीसरे दिन के पहले सत्र तक जारी रहा।

उसके उपरान्त संगोष्ठी के आयोजकों की ओर से तीसरे आलेख की प्रस्तुति की शुरुआत **कॉमरेड शिवानी** ने की। **'फ़ासीवाद सम्बन्धी मार्क्सवादी इतिहासलेखन : एक आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन'** नामक इस आलेख में क्लारा ज़ेटकिन, ग्राम्शी जैसे मार्क्सवादी विचारकों के दृष्टिकोणों की चर्चा करते हुए फ़ासीवाद के प्रति कॉमिण्टर्न यानी तीसरे कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल के विश्लेषण के उद्भव और विकास का अन्वेषण किया गया। साथ ही द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद पूँजीवादी राज्य तथा फ़ासीवाद की प्रकृति और कार्यप्रणाली में आये बदलावों पर विस्तृत चर्चा करते हुए एन्सन राबिनबाख़, डेविड अब्राहम, जेफ़ एली, कर्ट गॉसवाइलर और निकोस पूलांत्ज़ास जैसे मार्क्सवादी व अध्येताओं के विश्लेषण का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया गया। आलेख में इस बात को पुरज़ोर ढंग से रखा गया कि अपनी सातवीं कांग्रेस में कॉमिण्टर्न द्वारा अपनायी गयी 'पॉप्युलर फ़्रण्ट' की लाइन ग़लत थी, हालाँकि कॉमिण्टर्न ने बाद में इसे छोड़ दिया था।

आलेख में 1920 व 1930 के दशकों के दौरान कॉमिन्टर्न की लाइन में आये बदलावों का विस्तृत वर्णन करते हुए बताया कि "नीचे से संयुक्त मोर्चा" बनाने की लेनिनवादी लाइन सही लाइन थी परन्तु बाद में "वाम" व दक्षिणपन्थी भटकाव हुए, और छठीं कांग्रेस से अतिवाम के भटकाव की एक रोगात्मक प्रतिक्रिया के रूप में ही 'पॉप्युलर फ्रण्ट' की लाइन सामने आयी। फिर भी आज हमारे देश में फ़ासीवाद के प्रतिरोध के नाम पर बस "पॉप्युलर फ़्रण्ट" की ही बात की जाती है और उसे भी महज़ बुर्जुआ पार्टियों के साथ चुनावी मोर्चे तक अपचयित कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त आलेख में पिछली सदी के अन्तिम कुछ दशकों में पूँजीवादी संकट की प्रकृति में आ रहे बदलावों और इसी के साथ बुर्जुआ राज्य के निरंकुश होते जाने और फ़ासीवाद के काम करने के तौर तरीक़ों में आये बदलावों पर भी पूलांत्ज़ास आदि के विश्लेषण के हवाले से चर्चा की गयी। इसके बाद, पिछले 30 वर्षों के दौरान दुनिया में फ़ासीवाद समेत धुर दक्षिणपन्थी

(पेज 10 पर जारी)

फ़ासीवाद की सही समझ के साथ इसके विरुद्ध संघर्ष तेज़ करने का संकल्प

(पेज 9 से आगे)

प्रतिक्रिया के अन्य रूपों का विश्लेषण करते हुए पेपर में इस विषय पर हुए नये शोधों का भी आलोचनात्मक मूल्यांकन किया गया, जिसमें जी.एम. तमास, उगो पलहेता, आदि जैसे अध्येता शामिल थे। एक अलग हिस्से में इस पेपर में संशोधनवादी व सामाजिक-जनवादी व्याख्याओं की आलोचना पेश की गयी, जिसमें समकालीन भारत से माकपा के बुद्धिजीवियों की अवस्थिति की विस्तृत आलोचना पेश की गयी। इस विस्तृत आलेख पर चर्चा अगले दिन भी जारी रही।

संगोष्ठी में चौथे और पाँचवे दिन जर्मनी के अध्येता निकोलाई मेसरश्मिट, कोलकाता से दिशारी चक्रवर्ती और दिल्ली से सनी सिंह और कवयित्री व ऐक्टिविस्ट कात्यायनी के आलेख प्रस्तुत किये गये। निकोलाई के आलेख का शीर्षक **'उत्तरऔपनिवेशिक फ़ासीवाद: हिन्दू राष्ट्रवाद का आलोचनात्मक व उत्तरऔपनिवेशिक सिद्धान्त द्वारा एक विश्लेषण'** था। अपनी प्रस्तुति में निकोलाई ने कहा कि फ़ासीवाद को पूँजीवाद के ख़िलाफ़ उपजी प्रतिक्रिया के रूप में समझा जा सकता है। चूँकि भारत में हिन्दुत्व फ़ासीवाद के उभार 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में जर्मनी और इटली में हुए फ़ासीवादी उभार से तुलना नहीं की जा सकती है, इसलिए भारत में हुए फ़ासीवादी उभार का अध्ययन करने के लिए मार्क्सवाद का प्रयोग नहीं किया जा सकता है, क्योंकि यह पाश्चात्य सिद्धान्त है। भारत जैसा देश जहाँ औपनिवेशिक शासन का लम्बा इतिहास रहा है, वहाँ की वर्तमान परिस्थितियों के अध्ययन व विश्लेषण उत्तरऔपनिवेशिक सिद्धान्त की आवश्यकता है।

साथी अभिनव ने निकोलाई द्वारा रखे गये तर्कों की आलोचना रखते हुए कहा कि मार्क्सवाद एक विज्ञान है और विज्ञान सार्वभौमिक होता है। इसलिए, मार्क्सवादी सिद्धान्त का प्रयोग किसी भी देश में किसी भी कालखण्ड में उत्पन्न हुई राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक परिघटनाओं के अध्ययन में किया जाता है। उत्तरऔपनिवेशिक सिद्धान्त, उत्तरआधुनिकतावादी सिद्धान्त जैसे प्रतिक्रियावादी सिद्धान्त चूँकि किसी सामाजिक राजनितिक परिघटना के पीछे कार्यरत वर्ग संघर्ष की अवस्थिति व आर्थिक कारकों को नज़रान्दाज़ कर देते हैं इसलिए फ़ासीवाद के उभार के कारणों को पहचनाने में ये सिद्धान्त असफल हो जाते हैं। वास्ताव में, ये सिद्धान्त पूँजीवाद के सबसे प्रतिक्रियावादी दौर में पैदा हुए और इन्होंने वास्तव में मार्क्सवाद को निशाना बनाने के लिए समूची पश्चिमी आधुनिकता, प्रबोधन और तर्कणा को ही कचरा-पेटी के हवाले किया और उसे पश्चिम की "दमन की परियोजना" बताया। इसी के साथ भारत में उत्तनरऔपनिवेशिक सिद्धान्त की पूँछ पकड़ कर चलने वाले सबऑल्टर्न स्टडीज़ ने वस्तुत: संघ परिवार का ही समर्थन करने का काम किया क्योंकि उन्हें कारसेवा में भी प्राच्य की रचनात्मकता दिखायी दे रही थी।

कार्यक्रम में आगे आस्ट्रेलिया-एशिया वर्कर्स लिंक (AWWL) की सेक्रेटरी **जिसेल हान्ना** ने वीडियो लिंक के ज़रिये अपनी प्रस्तुति दी जिसका विषय था **'आस्ट्रेलिया में आल्ट-राइट का उभार और हम कैसे उससे लड़ रहे हैं'**। जिसेल ने कहा कि "फ़ासीवाद से लड़ने में मज़दूर वर्ग को मुख्य भूमिका निभानी है। हमें इस लड़ाई को व्यापक बनाने के लिए संयुक्त मोर्चे के तहत लोगों को संगठित करना होगा। व्यापक मेहनतकश आबादी की आम माँगों पर आन्दोलन खड़े करने होंगे और औद्योगिक मज़दूरों की प्रतिरोध कार्रवाइयाँ संगठित करनी होंगे।" उन्होंने अपनी बात में कई संघर्षों के उदाहरण भी दिये और फ़ासीवाद के विरुद्ध अन्तरराष्ट्रीय एकजुटता की ज़रूरत पर ज़ोर देते हुए अपनी बात ख़त्म की।

संगोष्ठी के चौथे दिन आयोजकों की ओर से **सनी सिंह** ने अपना आलेख **"भारतीय कम्युनिस्ट आंदोलन में फ़ासीवाद की समझ और इसके प्रतिरोध की रणनीतियाँ : एक आलोचनात्मक विश्लेषण"** प्रस्तुत किया जिसमें भारत में विभिन्न कम्युनिस्ट संगठनों व बुद्धिजीवियों तथा सामाजिक जनवादियों की फ़ासीवाद की समझ की विस्तृत आलोचना प्रस्तुत की गयी। इसमें सीपीआई (एमएल) न्यू डेमोक्रेसी, सीपीआई (एमएल) रेड स्टार, और साथ ही कॉ. मुरली (अजीत) की फ़ासीवाद की समझ की भी विस्तृत आलोचना प्रस्तुत की गयी। इसमें मार्क्सवाद से कॉ. मुरली के भटकाव को विस्तार से इंगित किया गया। साथ ही फ़ासीवाद के बारे में प्रभात पटनायक की समझदारी की भी आलोचना प्रस्तुत की गयी। इस आलेख पर चर्चा पाँचवें दिन भी जारी रही। आलेख पढ़े जाने के उपरान्त कई महत्वपूर्ण बातचीत के अलावा किसानों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP), आरक्षण और भारत में प्रभुत्वशाली उत्पादन पद्धति जैसे मुद्दों पर सवाल आये। इन सवालों के जवाब देते हुए इस बात पर जोर दिया कि हमें ग्रामीण श्रमिकों और ग़रीब तथा सीमान्त किसानों की माँगों जैसे संस्थागत ऋण, कृषि श्रमिकों के लिए श्रम विनियमन, धनी किसानों पर कर लगाकर कृषि लागतों को कम करने आदि पर स्वतन्त्र संघर्ष करना चाहिए, न कि एमएसपी के समर्थन में धनी किसानों व कुलकों के पीछे चलना चाहिए।

संगोष्ठी के पाँचवें व अन्तिम दिन सीपीआई (एमएल) मासलाइन के केजी रामचन्द्र की ओर से कॉ. पद्मा ने फ़ासीवाद पर एक आलेख प्रस्तुत किया। इसमें मोदी-शाह के वर्तमान शासन को एक खुली आतंकवादी तानाशाही बताते हुए संगोष्ठी के मुख्य पेपर की इस पोज़ीशन से सहमति व्यक्त की गई कि फ़ासीवाद महज़ एक धुर-दक्षिणपन्थी प्रतिक्रिया नहीं है बल्कि यह एक विशेष प्रकार की धुर-दक्षिणपन्थी प्रतिक्रिया है जिसके कई तत्व पिछली सदी के फ़ासीवाद से मिलते हैं पर कुछ तत्व बदल गये हैं जिनका ध्यान रखे बग़ैर इससे नहीं लड़ा जा सकता। इस आलेख पर भी लम्बी बहस हुई जो समय की कमी के चलते पूरी नहीं हो सकी।

संगोष्ठी के अन्तिम दिन आयोजकों की ओर से प्रसिद्ध हिन्दी कवयित्री और ऐक्टिविस्ट **कात्यायनी** द्वारा **'हमारे समय में फ़ासीवाद और कला-साहित्य का मोर्चा: कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न'** विषय पर आलेख प्रस्तुत किया गया। फ़ासीवाद किस तरह कला और साहित्य का अपने पक्ष में इस्तेमाल करता है, इस पर विस्तार से चर्चा करते हुए उन्होंने प्रतिक्रियावादी और पुनरुत्थानवादी तत्वों का इस्तेमाल करने की हिन्दुत्व फ़ासीवादियों की सांस्कृतिक रणनीति पर ज़ोर दिया। उन्होंने फ़ासीवाद विरोधी संघर्ष में कला और साहित्य के मोर्चे पर ऐतिहासिक अनुभवों को रेखांकित किया और हमारे समय में इसे लेकर मौजूद विभिन्न विभ्रमों और विजातीय प्रवृत्तियों पर एक आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया। इस अंतर्दृष्टिपूर्ण आलेख का समापन फ़ासीवाद के विरुद्ध संघर्ष में कला, साहित्य और संस्कृति के मोर्चे पर आसन्न कार्यभारों को रेखांकित करने के साथ हुआ।

कात्यायनी की प्रस्तुति के बाद न्यूयॉर्क के माओवादी कम्युनिस्ट संगठन के **एरिक सोराब** ने **'ट्रम्पवाद पर दस आरज़ी टिप्पणियाँ'** शीर्षक से प्रस्तुति दी। उन्होंने अमेरिकी पूँजीवाद के संकट के साथ-साथ वहाँ धुर-दक्षिणपन्थी प्रतिक्रिया के बढ़ते समर्थन की बात करते हुए बताया कि यूनियनों में संगठित मज़दूरों के लगभग 50 प्रतिशत ने इस बार ट्रम्प को वोट दिया। दूसरी तरफ़ गाज़ा में इज़रायल द्वारा जारी जनसंहार को बाइडेन शासन के नग्न समर्थन ने भी डेमोक्रेट्स को नुकसान पहुँचाया। एरिक ने कहा कि ट्रम्प के पीछे कोई कैडर-आधारित पार्टी की ताक़त नहीं है और कुछ अन्य पहलू भी हैं जिनके चलते उसे फ़ासिज़्म नहीं कहा जा सकता, लेकिन उसका शासन निश्चित रूप से बेहद प्रतिक्रियावादी और जनविरोधी होगा।

इसके बाद कोलकाता से आयीं अध्येता **दिशारी चक्रवर्ती** ने अपने आलेख में 'सोशल ड्रामा' और 'एस्थेटिक ड्रामा' की अवधारणा के माध्यम से फ़ासीवाद के कुछ सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं को रेखांकित किया। उन्होंने पिछले दिनों कोलकाता के आर.जी. कर मेडिकल कॉलेज में हुई बर्बर घटना और उसके विरोध में चले आन्दोलन की विभिन्न छवियों के उदाहरणों से अपनी बात रखी।

अन्तिम दिन आलेखों पर हुई चर्चा और सवाल-जवाब के साथ-साथ फ़ासीवाद के विशिष्ट चरित्र, इसके विरोध में संयुक्त मोर्चे के गठन, कांग्रेस या संसदीय वाम पार्टियों के साथ चुनावी गँठजोड़ के सवाल आदि पर चर्चा हुई। इस पर ज़ोर दिया गया कि फ़ासिस्टों को आज संविधान व संसद को भंग करने या अन्य आपवादिक क़ानून लागू करने की कोई ज़रूरत नहीं है। पिछले लम्बे समय के दौरान राज्य के विभिन्न अंगों में अपनी घुसपैठ के ज़रिये वे अन्दर से इसका 'टेकओवर' कर चुके हैं। बुर्जुआ राज्य के जनवादी तत्वों का पहले ही इस क़दर क्षरण हो चुका है कि उसे अपने उद्देश्यों के अनुरूप ढालने में फ़ासिस्टों को ज़्यादा मेहनत नहीं करनी पड़ी है।

संगोष्ठी के दौरान नेपाल से आये वरिष्ठ लेखक व वामपन्थी कार्यकर्ता **कॉ. निनु चापागाँई**, केरल के वरिष्ठ वामपन्थी कार्यकर्ता व लेखक **कॉ. के. मुरली,** आन्ध्र प्रदेश के वरिष्ठ कार्यकर्ता **कॉ. सिद्धार्थ,** सीपीआई एमएल मास लाइन के **कॉ. के.जी. रामचन्द्र, कॉ. रमा,** आदि सहित अनेक राजनीतिक कार्यकर्ताओं, बुद्धिजीवियों व संगठनों ने बातचीत में हिस्सा लिया। इसके साथ ही सातवीं अंतरराष्ट्रीय अरविन्द मेमोरियल संगोष्ठी के लिए प्रसिद्ध तेलुगु लेखिका **रंगनायकम्मा** व प्रसिद्ध मानवाधिकार कार्यकर्ता **तीस्ता सीतलवाड** की ओर से आये समर्थन संदेशों को पढ़कर सुनाया गया जिसमें उन्होंने आज के सबसे ज्वलन्त प्रश्न पर आयोजित इस विमर्श के लिए आयोजकों व भागीदारों को बधाई देते हुए अपने कुछ सुझाव साझा किये।

फ़ासीवाद जैसे बेहद ज्वलन्त व महत्वपूर्ण विषय पर विचार-विमर्श और चर्चा के लिए पाँच दिनों का समय कम पड़ गया और कई मुद्दों पर बातचीत को सीमित करना पड़ा लेकिन इस दौरान हुए राजनीतिक बहस-मुबाहिसे ने कई बेहद अहम सवालों को उठाया। संगोष्ठी में प्रस्तुत आलेखों को जल्द ही पुस्तक रूप में भी प्रकाशित किया जायेगा। निश्चित ही फ़ासीवाद की परिघटना को समझने और उससे लड़ने की सही सर्वहारा रणनीति तैयार करने की दिशा में कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों व संजीदा इन्साफ़पसन्द लोगों के लिए यह संगोष्ठी एक अहम भूमिका निभायेगी।

हालिया मज़दूर आन्दोलनों में हुए बिखराव की एक पड़ताल

● भारत

आज भारत में मज़दूर आन्दोलन देश स्तर पर बिखराव का शिकार है। क्रान्ति की शक्तियों पर प्रतिक्रान्ति की शक्तियाँ हावी हैं। यह सच्चाई है, जिसे समझकर ही हम मज़दूर आन्दोलन को फिर से खड़ा कर सकते हैं। लेकिन इस बिखराव के बावजूद मज़दूरों के स्वत:स्फूर्त संघर्ष अविराम जारी हैं। इन बिखरे स्वत:स्फूर्त संघर्षों को संगठित करने का काम ही आज मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी का प्रमुख कार्य है। लेकिन तमाम विजातीय प्रवृत्तियों (यानी मज़दूर आन्दोलन के भीतर मौजूद वे प्रवृत्तियाँ जो मज़दूर वर्ग नहीं बल्कि पूँजीपति वर्ग की नुमाइन्दगी करती हैं) का समय-समय पर मज़दूर आन्दोलन में उभार होता है, जिसके चलते आन्दोलन बिखरता रहता है। मालिकों का वर्ग इन्हीं रुझानों के ज़रिये हमारे और हमारे आन्दोलनों के भीतर घुसपैठ करता है। हाल-फिलहाल में भी इस तरह के कई मज़दूर संघर्ष हुए जो सही राजनीति, नेतृत्व व दिशा के अभाव में किसी न किसी शर्मनाक समझौते पर ही ख़त्म हुए या उसी ओर बढ़ रहे हैं। इस लेख में हम हाल में हुए इन आन्दोलनों और इनके बिखराव के कारणों पर बात करेंगे। इन आन्दोलनों का विश्लेषण करने से पहले संक्षिप्त में यह बात कर लेते हैं कि आज मज़दूर आन्दोलन के बिखराव के वस्तुगत कारण क्या हैं!

पिछले लम्बे अरसे से मज़दूर आन्दोलन जिन चुनौतियों का सामना कर रहा है उसके वस्तुगत और मनोगत दोनों ही कारण हैं। वस्तुगत इस तौर कि पूँजीवादी व्यवस्था में मज़दूर वर्ग पर मालिकों के वर्ग और उनकी पूँजीवादी राज्यसत्ता द्वारा चौतरफ़ा हमले होते रहते हैं। मालिकों-पूँजीपतियों की नुमाइन्दगी करने वाली तमाम सरकारें और पूरी की पूरी पूँजीवादी राज्य मशीनरी मज़दूरों के शरीर से ख़ून का आख़िरी क़तरा भी निचोड़ लेने के लिए और उसे मुनाफ़े में तब्दील करने के लिए तमाम मज़दूर-विरोधी नीतियाँ और क़ानून बनाती और लागू करती हैं। भारत में 2014 में फ़ासीवादी मोदी सरकार के सत्तासीन होने के बाद से तो यह सिलसिला बेतहाशा तेज़ी से आगे बढ़ा है। आज पहले के मुक़ाबले पूँजी की ताक़तें मज़दूर वर्ग पर और अधिक हावी हैं। पूँजीपति वर्ग के मोदी-शाह की फ़ासीवादी सरकार के दौर में तेज़ हुए हमलों के समक्ष मज़दूर वर्ग अभी कोई प्रभावी प्रतिरोध नहीं कर पा रहा है। साथ ही, पिछले 3-4 दशकों में निजीकरण, उदारीकरण और भूमण्डलीकरण की नीतियों के कारण श्रम के अनौपचारिकीकरण, कारखानों के छोटे होते आकार और सरकार का खुलकर धन्नासेठों के पक्ष में आ खड़ा होना वे अन्य वस्तुगत कारण हैं, जिनके कारण मज़दूर आन्दोलन के सामने पहले से गम्भीर चुनौतयाँ मौजूद हैं।

मज़दूर आन्दोलन में मौजूद मनोगत प्रवृत्तियों को समझने के लिए हाल में हुए आन्दोलनों पर नज़र डालते हैं। बीते सितम्बर-अक्टूबर में मुख्यत: तीन आन्दोलन हुए, जिनपर हम बात करेंगे। पहला, वेतन बढ़ाने व यूनियन गठन करने को लेकर तमिलनाडु में सैमसंग के मज़दूरों की हड़ताल 7 सितम्बर से शुरू हुआ। एक महीने तक यह हड़ताल सीटू के नेतृत्व में जारी रही और अन्त में कुछ मामूली वेतन में बढ़ोत्तरी, हड़ताली मज़दूरों को काम से न निकालने और कोई अनुशासनात्मक कार्रवाई न होने के आश्वासन के साथ यह हड़ताल एक समझौते के रूप में ख़त्म हो गयी। यूनियन बनाने की माँग को सैमसंग प्रबन्धन ने नहीं माना और इसपर कोर्ट में सुनवाई जारी है। यहाँ 1723 परमानेन्ट मज़दूर काम करते हैं, जिसमें से 1350 मज़दूर हड़ताल में शामिल थे। बाक़ी ठेके पर कार्यरत मज़दूर आन्दोलन में शामिल नहीं थे, क्योंकि कोई भी केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फेडरेशन उन्हें कभी संगठित करने का प्रयास ही नहीं करता; यह इन केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फेडरेशनों का सरकार से एक प्रकार का समझौता है कि ठेका व अस्थायी मज़दूरों को वे नहीं छुएँगी। सीटू ने इस पूरे संघर्ष को गड्ढे में धकेलने का काम किया, जो किसी भी तरह से समझौता करवाने पर आमादा थी। बता दें कि सीपीएम ने तमिलनाडु की स्टालिन सरकार को भी अपना समर्थन दिया हुआ है जो जी-जान से हड़ताल को तोड़ने में सैमसंग प्रबन्धन के साथ लगी हुई थी। लाल झण्डे की आड़ में ये संशोधनवादी मज़दूरों के बीच में मालिकों और पूँजीपतियों के घुसपैठिये और लफ़्फ़ाज़ होते हैं। संसद में बैठे इनके बड़े नेता मज़दूर-हितों पर भाषण देने के अलावा सारी मज़दूर-विरोधी नीतियों के बनने में साथ देते हैं। दूसरी तरफ़ निचले स्तरों पर इन यूनियनों के नेता मज़दूरों से कमीशन तो खाते ही हैं, समझौते के नाम पर मालिकों से भी पैसा लेते है। चुनावी पार्टियों से जुडी ट्रेड यूनियनें ज़्यादा से ज़्यादा एक दिन की रस्मी हड़तालें ही करती हैं। और वह भी इसलिए कि वह भी संगठित क्षेत्र के 7-8 प्रतिशत मज़दूरों के बीच उनकी कुछ ज़मीन बची रहे। असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों यानी ठेका, केजुअल, एप्रेन्टिस मज़दूरों की माँग इनके माँगपत्रक में निचले पायदान पर जगह पाती है और इस क्षेत्र के मज़दूरों का इस्तेमाल महज़ भीड़ जुटाने के लिए किया जाता है। यह तमाम केन्द्रीय ट्रेड यूनियन मज़दूर वर्ग से गद्दारी के रास्ते पर बहुत आगे जा चुके हैं।

(सैमसंग आन्दोलन में भी सीटू की गद्दारी के बारे में विस्तार से जानने के लिए मज़दूर बिगुल का अक्टूबर, 2024 का अंक देखे)

दूसरा आन्दोलन उत्तराखण्ड के पंतनगर में अक्टूबर में शुरू हुआ। मज़दूर काम से निकाले जाने, न्यूनतम वेतन, बोनस आदि जैसे श्रम क़ानूनों को लागू करवाने हेतु संघर्षरत थे। यह संघर्ष क़रीब दो महीने चला और आख़िरी के 37 दिनों में कई मज़दूर आमरण अनशन कर रहे थे। बीते 26 नवम्बर को स्थानीय भाजपा विधायक के आश्वासन के बाद इस आन्दोलन को वापस ले लिया गया। अभी तक न तो सभी मज़दूरों को काम पर वापस लिया गया है और न ही अभी तक इस कम्पनी में श्रम क़ानूनों को लागू किया गया है। वहीं निराशा में कई मज़दूरों ने अब कम्पनी से अपना हिसाब भी ले लिया है। यही दर्शाता है यह आन्दोलन वैचारिक तौर पर कितना कमज़ोर था। इस पूरे आन्दोलन में अपने आपको मज़दूरों का "इन्क़लाबी केन्द्र" बताने वाला संगठन भी शामिल था। यह आन्दोलन अपने हर चरण में भटकाव का ही शिकार रहा। इसलिए कभी धनी किसानों के संगठनों के दम पर आन्दोलन में जान फूँकने कि कोशिश होती, तो कभी अन्य चुनावबाज़ पार्टियों तक से भी आन्दोलन में शामिल होने की अपील की जाती रही। इस पूरे आन्दोलन में इन्क़लाबी मज़दूर केन्द्र की भागीदारी प्रमुखता से रही। इसने इनकी वैचारिक दरिद्रता को पुख़्ता कर दिया और दुबारा यह स्पष्ट हो गया किसी आन्दोलन को नेतृत्व देने के बजाय स्वत:स्फूर्तता का पिछलग्गू बनना ही इनका "इन्क़लाब" है। अपने आप को "इन्क़लाबी" बताने वाला यह संगठन मज़दूर आन्दोलन में जुझारू अर्थवाद का ही पैरोकार है। इससे पहले गुड़गाँव में चले बेलसोनिका के आन्दोलन को भी इस संगठन ने अर्थवाद के गड्ढे में धकेल दिया था। अतीत में भी मारुति से लेकर हीरो, हिताची जैसे कई सम्भावना-सम्पन्न संघर्षों में इन्होंने अपने निहायती अवसरवादी चरित्र को दिखलाया है और इन आन्दोलनों असफ़लता के दलदल में डुबाने का काफ़ी श्रेय इन "इन्क़लाबी कॉमरेडों" भी जाता है। आम तौर पर, एक क्रान्तिकारी संगठन का काम मज़दूर आन्दोलन और मज़दूर जनसमुदायों में मौजूद बिखरे सही विचारों को व्यवस्थित करना और उसके आधार पर एक सही राजनीतिक लाइन को सूत्रबद्ध करना और उसके आधार पर आन्दोलन को नेतृत्व देना होता है, न कि हर प्रकार की स्वत:स्फूर्त प्रवृत्तिके पीछे अवसरवादी तरीके सेघिसटना। इस प्रकार के अराजकतावादी व अराजकतावादी-संघाधिपत्यवादी (जो मज़दूर आन्दोलन में एक सही राजनीतिक लाइन व नेतृत्व की आवश्यकता को नहीं पहचानते और स्वत:स्फूर्तता की पूजा करते रहते हैं) संगठन मसलन "इंक़लाबी" केन्द्र और "सहयोग" केन्द्र अपनी इन्हीं विजातीय रुझानों के कारण पहले भी कई आन्दोलनों को नुकसान पहुँचा चुके हैं। (भारत के मज़दूर आन्दोलन में मौजूद इस जुझारू अर्थवाद की प्रवृत्ति के बारे जानने के लिए बिगुल में लिखित अर्थवाद लेखमाला को ज़रूर पढ़ें)

तीसरा आन्दोलन जो अब भी जारी है और एक संकट का शिकार है, वह है मारुति से निकाले गये मज़दूरों का काम पर वापसी के लिए संघर्ष। बीते 18 सितम्बर से मारुति मानेसर प्लाण्ट (हरियाणा) के वर्ष 2012 से बर्ख़ास्त मज़दूर अपनी कार्यबहाली, झूठे मुक़दमों की वापसी और 18 जुलाई की घटना की स्वतन्त्र जाँच की माँग के लिए मानेसर तहसील पर अनिश्चितकालीन धरने पर बैठे हुए हैं। बीच-बीच में कुछ रैलियों और सभाओं के माध्यम से यह आन्दोलन को तेज़ करने की कोशिश करते हैं, पर खींचतान कर भी 200-300 से अधिक जुटान नहीं हो पाता। अन्य दिनों में धरने पर सिर्फ़ 40-50 लोग ही मौजूद रहते हैं। कहने के लिए इन्होंने मारुति में कार्यरत ठेका मज़दूरों की माँगें भी शामिल की, पर इनको संगठित करने के लिए इनके पास कोई ठोस योजना नहीं है। साथ ही इस पूरे धरने में मारुति सुजुकी मज़दूर संघ की गद्दारी भी खुलकर सामने आ गयी, जिसने प्रबन्धन के साथ वार्ता पर परमानेन्ट मज़दूरों के वेतन में बढ़ोतरी करवा ली, पर अस्थायी- ठेका व काम से निकाले गये मज़दूरों की माँगों को नहीं उठाया।

ज्ञात हो कि 18 जुलाई 2012 को प्रबन्धन के अधिकारी की मौत के बाद यूनियन को ख़त्म करने के लिए मैनेजमेण्ट ने षड्यन्त्रकारी तरीक़े से 546 स्थायी व 1800 ठेका मज़दूरों को निकाल दिया था और 148 मज़दूरों को जेल भेज दिया गया था। फिर सबूतों के अभाव में 5 साल जेल में बिताने के बाद 117 मज़दूरों को बाइज़्ज़त बरी कर दिया गया। लेकिन यूनियन के 12 पदाधिकारियों और एक मज़दूर जिया लाल समेत 13 मज़दूरों को उम्रक़ैद की सज़ा सुनायी गयी। फिर 10 साल जेल में बिताने के बाद ज़मानत हासिल हुई। इस तरह 10 साल लम्बे क़ानूनी संघर्ष के बाद 2022 में बर्ख़ास्त मज़दूरों ने ज़मानत के बाद एक बार फिर से कार्यबहाली, केस वापसी और घटना की निष्पक्ष जाँच की माँग को लेकर 18 जुलाई घटना की बरसी के मौक़ों पर धरना-प्रदर्शन के ज़रिये प्रमुखता से उठाना शुरू कर दिया। बता दें कि इसके नेतृत्व पर मज़दूर "सहयोग" केन्द्र नामक संगठन का प्रभाव है। साथ ही "इन्क़लाबी कॉमरेड" भी इनके "सहयोग" में है। यह संगठन भी मज़दूरों की राजनीतिक चेतना का विकास करने की बजाय पुछल्लावाद का शिकार है। इनकी सोच है कि मज़दूर आबादी स्वयं जो भी करेगी वह सही करेगी और इसमें उन्हें सही राजनीतिक लाइन व राजनीतिक नेतृत्व की आवश्यकता नहीं है, या वे स्वयं ही इसे स्वत:स्फूर्त रूप से निर्मित कर लेंगे। लेकिन फिर आप भी वहाँ किसलिए हैं? ज़ाहिर है, मज़दूर आन्दोलन और मज़दूर जनसमुदायों व आम तौर पर जनता से ही क्रान्तिकारी संगठन सीखता है, लेकिन वह जनता के बीच बिखरे सही विचारों को केन्द्रीकृत करता है, व्यवस्थित करता है और एक सही राजनीतिक लाइन को उसी के आधार पर निर्मित कर उसे नेतृत्व देता है। इसमें केवल सीखने के पहलू पर ज़ोर देना अराजकतावाद व संघाधिपत्यवाद है, जबकि केवल दूसरे पहलू पर ज़ोर देना हिरावलपन्थ। मज़दूर वर्ग का क्रान्तिकारी संगठन न तो मज़दूर जनसमुदायों में मौजूद हर रुझान के पीछे पुछल्ला बनकर चल सकता है, और न ही वह मज़दूर जनसमुदायों में ही मौजूद बिखरे, अव्यवस्थित व विकेन्द्रित सही विचारों को एकत्र, व्यवस्थित व केन्द्रीकृत किये, उन्हें नेतृत्व दे सकता है। मज़दूर सहयोग केन्द्र व इंक़लाबी मज़दूर केन्द्र जैसे संगठन वास्तव में स्वत:स्फूर्ततावाद, अर्थवाद और अराजकतावादी-संघाधिपत्यवाद के शिकार हैं और यही वजह है कि तमाम आन्दोलनों में उनकी भूमिका नकारात्मक रही है। मसलन, 2012 से लेकर आज तक मारुति के आन्दोलन को गड्ढे में डालने में मज़दूर सहयोग केन्द्र ने पूरा सहयोग दिया है। (मारुति आन्दोलन और मज़दूर सहयोग केन्द्र की अराजकतावादी-संघाधिपत्यवादी राजनीति के बारे बिगुल के पिछले अंकों के विस्तार से लिखा जा चुका है।)

इन आन्दोलनों की असफ़लता या उनके जारी संकट के पीछे और आम तौर पर मज़दूर आन्दोलन के समक्ष उपस्थित इस संकट में ऐसे कारणों को समझना ज़रूरी है जो स्वयं आन्दोलन के भीतर मौजूद हैं। ऐसी कई प्रवृत्तियाँ आन्दोलन के भीतर मौजूद हैं जो अन्दर से मज़दूरों के संघर्षों को कमज़ोर और खोखला बनाती जाती हैं। ऐसी विजातीय प्रवृत्तियाँ पूरी दुनिया के मज़दूर आन्दोलनों में इतिहास से लेकर आज तक मौजूद रही हैं। अपनी अन्तर्वस्तु में यह प्रवृत्तियाँ मालिकों और पूँजीपतियों के विचारों यानी कि बुर्जुआ विचारधारा से प्रेरित होती हैं और मज़दूर आन्दोलन में, सचेतन या अचेतन तौर पर, पूँजीपति वर्ग के पक्ष की नुमाइन्दगी करती हैं और इसी वर्ग की सेवा करती हैं।

पहली बात तो हमें यह समझ लेना चाहिए कि आज के दौर के अलग-अलग कारख़ानों में अलग से हड़ताल करके जीतना पहले के मुकाबले कहीं ज़्यादा मुश्किल है। अगर आज मज़दूर आन्दोलन को आगे बढ़ाना है तो समूचे सेक्टर, या ट्रेड यानी, समूचे पेशे, के आधार पर सभी मज़दूरों को अपनी यूनियन व संगठन बनाने होंगे। इसके ज़रिये ही कारख़ानों में यूनियनों को भी मज़बूत किया जा सकता है और कारख़ाना-आधारित संघर्ष भी जीते जा सकते हैं। इसी आधार पर ठेका, कैजुअल, परमानेन्ट मज़दूरों को साथ आना होगा और अपने सेक्टर और इलाक़े का चक्का जाम करना होगा। तभी मालिकों और सरकार को झुकाया जा सकता है। एक फैक्ट्री के आन्दोलन तक ही सीमित होने के कारण उपरोक्त तीनों आन्दोलन आगे नहीं बढ़ सके। ऐसी पेशागत यूनियनों के अलावा, इलाकाई आधार पर मज़दूरों को संगठित करते हुए उनकी इलाकाई यूनियनों को भी निर्माण करना होगा। इसके ज़रिये पेशागत आधार पर संगठित यूनियनों को भी अपना संघर्ष आगे बढ़ाने में मदद मिलेगी।

दूसरी दिक्कत है सही राजनीतिक नेतृत्व का न होना। इससे ही यह सवाल

(पेज 12 पर जारी)

हालिया मज़दूर आन्दोलनों में हुए बिखराव की पड़ताल

(पेज 11 से आगे)

निकलता है कि मज़दूर आन्दोलन में वह कौन सी प्रवृत्तियाँ हैं, जो मज़दूर आन्दोलन के सही नेतृत्व के विकसित होने में रुकावट हैं। हमने ऊपर इनमें दो प्रमुख रुझानों की चर्चा की है: संशोधनवादी अर्थवाद और समझौतापरस्ती जो संसदीय वामपंथी पार्टियों की ट्रेड यूनियनें करती हैं, और, अराजकतावादी-संघाधिपत्यवादी अर्थवाद और स्वत:स्फूर्ततावाद, जिसे इंकलाबी मज़दूर केन्द्र और मज़दूर सहयोग केन्द्र जैसे संगठन अमल में लाते हैं। दोनों ही प्रवृत्तियाँ अवसरवाद की विभिन्न किस्मों को दिखलाती हैं। यह भी ग़ौरतलब है कि अस्थायी मज़दूरों संगठित करना और उनकी माँगों को प्राथमिकता देते हुए संघर्ष को नये सिरे से खड़ा करना दोनों ही प्रवृत्तियों के लिए कोई मसला नहीं बनता है।

मज़दूर आन्दोलन में मौजूद सबसे प्रमुख विजातीय प्रवृति है अर्थवाद। यह प्रवृत्ति उपरोक्त तीनों आन्दोलन में भी मौजूद थी। अर्थवाद दरअसल मज़दूरों के लिए केवल आर्थिक संघर्ष को ही, यानी वेतन-भत्ते और बेहतर कार्यस्थितियों के लिए संघर्ष को ही समस्त आन्दोलन के लिए सर्वोपरि बना देता है और इस मुग़ालते में रहता है कि मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक चेतना स्वतःस्फूर्त तरीक़े से इन्हीं आर्थिक संघर्षों मात्र से पैदा हो जायेगी। अर्थवादी राजनीति वास्तव में सुधारवादी राजनीति ही है। अर्थवाद जब यह कहता है कि मज़दूरों की केवल आर्थिक मसलों में ही दिलचस्पी होती है तो वह दरअसल अपनी सुधारवादी राजनीति और वैचारिकी की सीमाओं को ही उजागर कर रहा होता है। अर्थवादी प्रवृत्ति वास्तव में पूँजीवाद के आर्थिक तर्क को मज़दूर आन्दोलन में स्थापित करने का काम करती है और मज़दूरों को वेतन-भत्ते बढ़वाने के लिए ही संघर्ष करने की बात पर ज़ोर देती है। आज तथाकथित कम्युनिस्ट पार्टियों से जुड़ी सीटू-एटक-एक्टू-एचएमएस जैसी तमाम ट्रेड यूनियनें अर्थवाद का बेहद भोंडा संस्करण प्रस्तुत करती हैं। वहीं दूसरी तरफ़ इन्क़लाबी मज़दूर केन्द्र-मज़दूर सहयोग केन्द्र जैसे संगठन जुझारू क़िस्म के अर्थवाद यानी कि "वामपन्थी" अर्थवाद को पेश करते दीखते हैं। यदि आप 'अर्थवाद' शब्द के मूल पर ग़ौर करेंगे तो आप समझ जायेंगे कि अर्थवाद की प्रवृत्ति आर्थिक कारकों को राजनीतिक कारकों के ऊपर तरजीह देती है। यानी यह राजनीति को कमान में रखने की बजाय आर्थिक कारकों को कमान में रखती है। यह मज़दूर वर्ग को एक राजनीतिक वर्ग के रूप में संगठित होने और सत्ता का प्रश्न उठाने की क्षमता अर्जित करने से व्यवस्थित तरीक़े से रोकती है।

ऐसा नहीं है मज़दूर वर्ग अपने आर्थिक माँगों के लिए नहीं लड़ेगा। आर्थिक संघर्षों को लड़ना और अर्थवादी संघर्ष लड़ना एक ही चीज़ नहीं है। आर्थिक संघर्षों को राजनीतिक तौर पर भी लड़ा जा सकता है और आर्थिक तौर पर भी। राजनीतिक तौर पर आर्थिक संघर्षों को संगठित करने का अर्थ होता है कि मज़दूरों को इन संघर्षों के ज़रिये भी सिर्फ अपने मालिक को नहीं, बल्कि मालिकों की समूची जमात को दुश्मन के रूप में पहचानना सीखना, समूची पूँजीवादी सरकार व राज्यसत्ता को निष्पक्ष नहीं बल्कि मालिकों की इस जमात के नुमाइन्दे के तौर पर देखना सीखना; केवल अपने कारखाने या पेशे के मज़दूरों के स्तर पर ही अपने वर्ग हितों को संकुचित नहीं करना, बल्कि व्यापकतम सम्भव वर्ग एकजुटता क़ायम करने के लिए अपने कारखाने की सीमाओं के पार, फिर अपने पेशे के उजरती मज़दूरों और फिर अपने पेशे की सीमाओं के पार सभी पेशों के उजरती मज़दूरों की समूची जमात को अपनी जमात के रूप में पहचानना सीखना। केवल इसी प्रक्रिया में मज़दूर आन्दोलन एक ऐसी शक्ति में तब्दील हो सकता है जो मालिकों की जमात को तात्कालिक और दूरगामी, दोनों ही लड़ाइयों में शिकस्त दे सकती है। मालिकों की जमात अपने आपको एक राजनीतिक वर्ग के तौर संगठित करके ही हावी है और हम पर शासन कर रही है। वह केवल अपने तात्कालिक आर्थिक हितों को ध्यान में रखकर शासन नहीं कर सकती, बल्कि वह अपने दूरगामी राजनीतिक हितों को तरजीह देकर ही शासन कर सकती है और कर रही है। वहीं दूसरी ओर अर्थवाद की प्रवृत्ति हमें अपने कारखानों के वेतन-भत्तों के संघर्षों तक ही सीमित करके हमें वेतन-भत्तों के संघर्षों में भी अशक्त बना देती है। हमें यह समझ लेना चाहिए कि मज़दूर वर्ग आर्थिक माँगों की लड़ाई भी तभी लड़ सकता है जब वह इसे राजनीतिक वर्ग के तौर पर लड़े। बिना राजनीतिक हस्तक्षेप के मज़दूर केवल वेतन-भत्ते के लिए संघर्ष में ही उलझे रहेंगे। अर्थवाद के कारण ही मज़दूर वर्ग राजनीतिक प्रश्न उठाने में, जिसमें राजनीतिक सत्ता का प्रश्न सर्वोपरि है, असमर्थ हो जाता है और केवल दुवन्नी-अट्ठन्नी, भत्तों-सहूलियतों की लड़ाई के गोल चक्कर में घूमता रहता है।

वहीं दूसरी बात जो समझनी सबसे ज़्यादा ज़रूरी है वह यह कि मज़दूर वर्ग के व्यापक जनसमुदायों में स्वतःस्फूर्त रूप से जो चेतना पैदा करता है वह आर्थिक माँगों से आगे नहीं जाती और वह अपने आप में सर्वहारा चेतना नहीं होती। अगर मज़दूरों के बीच पायी जाने वाली इसी स्वतःस्फूर्ततावाद की सोच को आगे बढ़ा दिया जाये तो वह अर्थवाद, ट्रेड यूनियनवाद, मज़दूरवाद, पेशागत संकीर्णतावाद, ग़ैरपार्टी क्रान्तिवाद, अराजकतावाद–संघाधिपत्यवाद आदि ग़ैर-सर्वहारा प्रवृत्तियों तक चली जाती है। इन सभी प्रवृत्तियों के विस्तार में हम अभी नहीं जा सकते, पर कुल मिलाकर कहें तो यह वह तमाम विजातीय पूँजीवादी प्रवृत्तियाँ हैं, जो मज़दूर आन्दोलन को अन्दर से खोखला कर रही हैं। मार्क्स से लेकर लेनिन और माओ ने इन सभी प्रवृत्तियों के ख़िलाफ़ सतत संघर्ष चलाया और मज़दूर आन्दोलन को एक सही राजनीतिक दिशा दी।

आज के फ़ासीवादी दौर में मज़दूर आन्दोलन में मौजूद इन प्रवृत्तियों के ख़िलाफ़ संघर्ष और अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। आज मोदी सरकार जिस रफ़्तार से सभी श्रम क़ानूनों व जनवादी अधिकार को ख़त्म कर रही है, इसके ख़िलाफ़ लड़ने में अर्थवाद बाधा पैदा करता है क्योंकि जिस समय मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था के दायरे के आगे जाने का कार्यक्रम मज़दूर वर्ग के सामने पेश करना होता है, उस समय भी अर्थवाद मज़दूर वर्ग को इसी व्यवस्था के भीतर ही महज़ आर्थिक लाभ हासिल करने तक सीमित कर देता है। राजनीतिक संघर्ष की रणनीति के अभाव में प्रतिरोध्य फ़ासीवादी उभार मज़दूर आन्दोलन के अर्थवाद की गलियों में घूमते रहने के कारण अप्रतिरोध्य बन जाता है। इसलिए मज़दूर वर्ग के आन्दोलन के लिए अर्थवाद, ट्रेड यूनियनवाद, अराजकतावाद व अराजकतावादी-संघाधिपत्यवादी आत्मघाती प्रवृत्तियाँ हैं, जिन्हें मज़दूर आन्दोलन के बीच से उखाड़ फेंकने के लिए सतत संघर्ष करना होगा। इनके ख़िलाफ़ संघर्ष कर के ही आज मज़दूर आन्दोलन आगे बढ़ सकता है। यह आम तौर पर भी ज़रूरी है और फ़ासीवाद विरोधी सर्वहारा संघर्ष को संगठित करने के लिए विशेष रूप से ज़रूरी है।

चीनी क्रान्ति के महान नेता माओ त्से-तुङ के जन्मदिवस (26 दिसम्बर) के अवसर पर

माओ त्से-तुङ सिर्फ़ चीनी जनता के लम्बे क्रान्तिकारी संघर्ष के बाद लोक गणराज्य के संस्थापक और समाजवाद के निर्माता ही नहीं थे, मार्क्स और लेनिन के बाद वे सर्वहारा क्रान्ति के सबसे बड़े सिद्धान्तकार और हमारे समय पर अमिट छाप छोड़ने वाले एक महानतम क्रान्तिकारी थे।

माओ त्से-तुङ ने चीन में रूस से अलग समाजवाद के निर्माण की नयी राह चुनी और उद्योगों के साथ ही कृषि के समाजवादी विकास पर तथा गाँवों और शहरों का अन्तर मिटाने पर भी विशेष ध्यान दिया। आम जन की सर्जनात्मकता और पहलकदमी के दम पर बिना किसी बाहरी मदद के साम्राज्यवादी घेरेबन्दी के बीच उन्होंने अकाल, भुखमरी और अफ़ीमचियों के देश चीन में विज्ञान और तकनोलाजी के विकास के नये कीर्तिमान स्थापित कर दिये, शिक्षा और स्वास्थ्य को समान रूप से सर्वसुलभ बना दिया, उद्योगों के निजी स्वामित्व को समाप्त करके उन्हें सर्वहारा राज्य के स्वामित्व में सौंप दिया और कृषि के क्षेत्र में कम्यूनों की स्थापना की। इस अभूतपूर्व सामाजिक प्रगति से चकित-विस्मित पश्चिमी अध्येताओं तक ने चीन की सामाजिक-आर्थिक प्रगति और समतामूलक सामाजिक ढाँचे पर सैकड़ों पुस्तकें लिखीं।

स्तालिन की मृत्यु के बाद सोवियत संघ में जब ख्रुश्चेव के नेतृत्व में एक नये क़िस्म का पूँजीपति वर्ग सत्तासीन हो गया तो उसके नकली कम्युनिज़्म के ख़िलाफ़ संघर्ष चलाते हुए माओ ने मार्क्सवाद को और आगे विकसित किया। पहली बार माओ ने रूस और चीन के अनुभवों के आधार पर यह स्पष्ट किया कि समाजवाद के भीतर से पैदा होने वाले पूँजीवादी तत्व किस प्रकार मज़बूत होकर सत्ता पर क़ब्ज़ा कर लेते हैं। उन्होंने इन तत्वों के पैदा होने के आधारों को नष्ट करने के लिए सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का सिद्धान्त प्रस्तुत किया और चीन में 1966 से 1976 तक इसे सामाजिक प्रयोग में भी उतारा। यह माओ त्से-तुङ का महानतम सैद्धान्तिक अवदान है।

1976 में माओ की मृत्यु के बाद चीन में भी देङ सियाओ-पिङ के नेतृत्व में पूँजीवादी पथगामी सत्ता पर क़ाबिज़ होने में कामयाब हो गये, क्योंकि पिछड़े हुए चीनी समाज के छोटी-छोटी निजी मिलकियतों वाले ढाँचे में समाजवाद आने के बाद भी पूँजीवाद का मज़बूत आधार और बीज मौजूद थे। लेकिन पूँजीवाद की राह पर नंगे होकर दौड़ रहे चीन के नये पूँजीवादी सत्ताधारी आज भी चैन की साँस नहीं ले सके हैं। माओ की विरासत को लेकर चलने वाले लोग आज भी वहाँ मौजूद हैं और संघर्षरत हैं।

आज से 52 वर्षों पहले 1962 में माओ त्से-तुङ ने भविष्य के बारे में जो आकलन प्रस्तुत किया था, ऐतिहासिक रूप से वह आज भी सही है : "अब से लेकर अगले पचास से सौ वर्षों तक का युग एक ऐसा महान युग होगा जिसमें दुनिया की सामाजिक व्यवस्था बुनियादी तौर पर बदल जायेगी। यह एक ऐसा भूकम्पकारी युग होगा जिसकी तुलना इतिहास के पिछले किसी भी युग से नहीं की जा सकेगी। एक ऐसे युग में रहते हुए हमें उन महान संघर्षों में जूझने के लिए तैयार रहना चाहिए, जो अपनी विशेषताओं में अतीत के तमाम संघर्षों से कई मायनों में भिन्न होंगे।"

"कम्युनिस्टों को हर समय सच्चाई का पक्षपोषण करने के लिए तैयार रहना चाहिए क्योंकि हर सच्चाई जनता के हित में होती है; कम्युनिस्टों को हर समय अपनी ग़लतियाँ सुधारने के लिए तैयार रहना चाहिए क्योंकि ग़लतियाँ जनता के हितों के विरुद्ध होती हैं।"

– माओ त्से-तुङ, 'मिलीजुली सरकार के बारे में' (24 अप्रैल 1945)

"कम्युनिस्टों को चाहिए कि वे सबसे ज्यादा दूरदर्शी बनें; आत्म-बलिदान के लिए सबसे ज्यादा तत्पर रहें, सबसे ज्यादा दृढ़ बनें, तथा स्थिति को आँकने में पूर्वधारणाओं से तनिक भी काम न लें, और बहुसंख्यक आम जनता पर भरोसा रखें और उसका समर्थन प्राप्त करें।"

– माओ त्से-तुङ, 'जापानी-आक्रमण-विरोधी काल में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के कर्तव्य' (3 मई 1937)

"हम कम्युनिस्ट बीज के समान होते हैं और जनता भूमि के समान होती है। हम लोग जहाँ कहीं भी जायें, वहाँ जनता के साथ एकता क़ायम करें, उसमें अपनी जड़ें जमा लें, और उसके बीच फलें-फूलें।"

– माओ त्से-तुङ, 'छुङकिङ समझौता-वार्ता के बारे में' (17 अक्टूबर 1945)

"हम कम्युनिस्टों में यह क्षमता अवश्य होनी चाहिए कि हम सभी बातों में अपने को आम जनता के साथ एकरूप कर सकें। अगर हमारे पार्टी-सदस्य बन्द कमरे में बैठे रहकर सारी ज़िन्दगी गुज़ार दें और दुनिया का सामना करने व तूफ़ान का मुक़ाबला करने के लिए कभी बाहर ही न निकलें, तो चीनी जनता को उससे क्या फ़ायदा होगा? रत्तीभर भी नहीं, और इस तरह के पार्टी-सदस्य हमें नहीं चाहिए। हम कम्युनिस्टों को दुनिया का सामना करना चाहिए और तूफ़ान का मुक़ाबला करना चाहिए; यह दुनिया जन-संघर्षों की विशाल दुनिया है तथा यह तूफ़ान जन-संघर्षों का ज़बरदस्त तूफ़ान है।"

– माओ त्से-तुङ, 'संगठित हो जाओ!' (29 नवम्बर 1943)

"एक कम्युनिस्ट को हठधर्मी नहीं होना चाहिए, और न ही उसे दूसरों पर रोब जमाने की कोशिश करनी चाहिए, उसे ऐसा हरगिज़ नहीं समझना चाहिए कि वह ख़ुद तो हर चीज़ का माहिर है और दूसरों को कतई कुछ भी नहीं आता; उसे अपने को अन्दर बन्द नहीं कर लेना चाहिए, या अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने तथा शेखी बघारने की कोशिश नहीं करनी चाहिए, और न ही दूसरों पर सवारी गाँठने की कोशिश करनी चाहिए।"

– माओ त्से-तुङ, 'शेनशी-कानसू-निङया सीमान्त क्षेत्र की प्रतिनिधि-सभा में भाषण' (21 नवम्बर 1941)

चिन्मय स्कूल प्रशासन की आपराधिक लापरवाही से प्रिन्स की मौत
फिर भी स्कूल प्रशासन को बचाने में लगी दिल्ली पुलिस

● लता

पिछली 3 दिसम्बर को दक्षिण दिल्ली के वसन्त विहार में स्थापित चिन्मय स्कूल में छठी कक्षा में पढ़ने वाले एक मासूम गरीब दलित बच्चे की मौत हो गई। कक्षा में किसी अन्य सह-पाठी के साथ मार-पीट में दूसरे सहपाठी ने प्रिन्स का गला कुछ पल के लिए दबाया। गला दबने के बाद प्रिन्स एक-दो कदम चला और ज़मीन पर गिर गया। उसके ज़मीन पर गिरने पर किसी बच्चे ने शिक्षकों को सूचित किया। शिक्षिकाएँ आयीं, घबराकर इधर-उधर भागती रहीं लेकिन उन्होंने कुछ नहीं किया। कुछ देर में स्कूल में उपस्थित मेडिकल अफ़सर प्रिन्स के पास आया। इस दौरान प्रिन्स ज़मीन पर गिरा हुआ था और स्कूल की शिक्षिकाओं और मेडिकल अफ़सर ने प्रिन्स में पुनः जान डालने के लिए दिये जाने वाले सीपीआर को नहीं दिया। मौजूद मेडिकल अफ़सर ने बस एक-दो बार प्रिन्स की छाती दबायी लेकिन सीपीसीआर के लिए सबसे ज़रूरी मुँह से मुँह में हवा देने का काम उपस्थित मेडिकल अफ़सर या शिक्षिकाओं ने नहीं किया। इसके बाद प्रिन्स के अभिभावकों को सचित किये बिना प्रिन्स को स्कल के निकट होली एंजल अस्पताल और फिर फोर्टिस अस्पताल ले गये। डॉक्टरों ने होली एंजेल्स में उसे मृत घोषित कर दिया था। एक शिक्षिका ने अभिभावकों को फोर्टिस से सूचित करवा अस्पताल आने को कहा। माँ के अस्पताल पहुँचने पर शिक्षिकाओं ने पहले माँ नीतू से कहा सब ठीक है और वह परेशान न हो। फिर अचानक एक ने आ कर कहा कि प्रिन्स अब नहीं रहा। माँ-पिता और परिवार वालों की स्थिति का अन्दाज़ा लगा पाना कठिन है। प्रशासन की लापरवाहियों पर हम आगे चर्चा करेंगे लेकिन पुलिस के शर्मनाक रवैये की शुरुआत यहाँ से होती है। पुलिस ने माँ-पिता के हस्ताक्षर के बिना प्रिन्स के शव को पोस्ट-मॉर्टम के लिए भेज दिया। इस दौरान प्रिन्स के रिश्तेदार वसंत विहार थाने कई बार जाते रहे और शाम के बाद वहाँ लगभग धरना दे कर बैठ गये। तब भी पुलिस ने प्रिन्स की मौत की शिकायत दर्ज़ नहीं की। शाम तक आरडब्ल्यूपीआई के कार्यकर्ता और दिशा छात्र संगठन के सदस्य भी कुसुमपुर पहुँच गये थे। आरडब्ल्यूपीआई के कार्यकर्ताओं से वहाँ मौजूद लोगों ने बताया कि पुलिस अधिकारी प्रिन्स का पार्थिव शरीर दूसरे पते पर ले गये हैं और उनपर जल्दी से जल्दी दाह संस्कार करने का दबाव बना रहे हैं, लाख बोलने पर भी उसे कुसुमपुर पहाड़ी नहीं लाने दे रहे हैं। पुलिस अधिकारियों पर आरडब्ल्यूपीआई ने दबाव बनाया तब उन्होंने पार्थिव शरीर को कुसुमपुर लाने और शिकायत दर्ज़ करने की बात मानी। थाने पर हमारी शिकायत तो ले ली गयी लेकिन एक बार फिर पुलिस एफ़आईआर दर्ज़ करने में आना-कानी करने लगी। काफ़ी देर तक बहस करने के बाद पुलिस ने एफ़आईआर किया लेकिन सिर्फ़ भारतीय न्याय संहिता (बीएनएस) की धारा 105 के तहत मामला दर्ज़ किया। लाख कहने पर भी पुलिस ने स्कूल प्रशासन के ख़िलाफ़ गैर-जिम्मेदारी या जाति उत्पीड़न की धार नहीं लगायी है।

असन्तुष्ट माँ-पिता के साथ कुसुमपुर

पहाड़ी की एक बड़ी आबादी, दिशा के सदस्य और आरडब्ल्यूपीआई के कार्यकर्ता स्कूल प्रशासन पर पुलिस कार्रवाई की माँग करते चिन्मय स्कूल के गेट पर बैठ गये। पूरी रात बैठने के बाद सुबह तक पुलिस की कार्रवाई की कोई ख़बर नहीं मिली। प्रिन्स के माँ-पिता और परिवारवालों ने प्रिन्स के पार्थिव शरीर के साथ चिन्मय स्कूल गेट पर धरना जारी रखने का निर्णय लिया। पुलिस लगातार धरना समाप्त करने और दाह-संस्कार करने का दबाव बना रही थी। प्रिन्स के माँ-पिता, कुसुमपुर पहाड़ी की जनता, दिशा के सदस्यों और आरडब्ल्यूपीआई के कार्यकर्ताओं के आगे पुलिस की एक नहीं चल रही थी। पुलिस इस दौरान प्रिन्स और उनके परिवार वालों से कभी 5 लाख तो कभी 10 लाख रुपए ले कर मामले को रफ़ा-दफ़ा करने की बात भी कर रही थी। अन्त में जब लोगों के आगे पुलिस की नहीं चली तो उसने लाठी चार्ज कर दिया। धरने का नेतृत्व कर रहे आरडब्ल्यूपीआई के कार्यकर्ताओं और दिशा के सदस्यों को पुलिस बुरी तरह से पीटती हुई हिरासत में ले गई। उसके बाद पुलिस ने कुसुमपुर की जनता पर बर्बर लाठीचार्ज किया। पुलिस ने न बच्चे देखे न बुज़ुर्ग सभी पर लाठियाँ बरसायी। धरने पर मौजूद महिलाओं पर पुरुष पुलिसकर्मियों ने हाथ उठाया। कुसुमपुर की जनता ने पुलिस दमन का जम कर सामना किया।

धरने पर मौजूद लोगों को पुलिस लाठीचार्ज से तितर-बितर करने के बाद प्रिन्स के माँ-पिता और परिवारवालों को ज़बरदस्ती पुलिस वैन में बिठाया और प्रिन्स के पार्थिव शरीर को जमीन पर घसीटते हुए एम्बुलेंस में ले गयी। परिवार के लोगों पर दबाव बना कर जल्द-से-जल्द दाह संस्कार कर दिया गया। पुलिस ने दाह संस्कार में परिवार के लोगों को भी शामिल होने नहीं दिया लेकिन भाजपा का नेता रामवीर बिधूड़ी अपने चेले-चपाटियों के साथ वहाँ मौजूद था। परिवार वालों के अनुसार पुलिस ने उन्हें अपने बेटे की आखिरी विदाई के लिए कुछ भी नहीं करने दिया। बस एक बार चेहरा दिखाया और भारी पुलिस उपस्थिति में दाह संस्कार कर दिया।

प्रिन्स की मौत का ज़िम्मेदार चिन्मय स्कूल प्रशासन है

प्रिन्स के पिता सागर ने प्रिन्स को सुबह 7:45 पर स्कूल छोड़ा। स्कूल में प्रदूषण की वजह से इन दिनों सुबह की प्रार्थना नहीं हो रही है। 7:45 से 8:20 तक प्रिन्स के ज़मीन पर अचेत होकर गिरने तक कक्षा में अध्यापिका नहीं थी। बच्चों की आपसी मार-पीट के दौरान प्रिन्स दम घुटने या किसी वजह से अचेत ज़मीन पर गिर गया था। उसे इस समय तत्काल सीपीआर मिलनी चाहिए थी। लेकिन इसके लिए शिक्षिकाएँ प्रशिक्षित नहीं थीं। सबसे आश्चर्य की बात यह कि सेना से सेवानिवृत्त मेडिकल अफ़सर ने भी उस 12 साल के मासूम बच्चे को सीपीआर नहीं दिया। यह तो कल्पना से परे है कि सेना के अधिकारी को सीपीआर देनी नहीं आती होगी। लेकिन उस अधिकारी ने कुछ नहीं किया और प्रिन्स को बचाने का बहुमूल्य समय बर्बाद होता गया। चिन्मय स्कूल प्रशासन में घोर जातिवाद मौजूद होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि **चिन्मय स्कूल के संस्थापक चिन्मयानन्द सरस्वती ने गोलवलकर और एस. एस. आपटे के साथ मिल कर 1964 में देश में हिन्दू-मुस्लिम दंगें करवाने वाले और जातिगत नफ़रत पैदा करने वाले विश्व हिन्दू परिषद की स्थापना की थी। जिस स्कूल मिशन के संस्थापक ही घोर हिंदुत्ववादी हो उस स्कूल प्रशासन से आप जाति, वर्ग और धर्म के नाम पर भेद-भाव की उम्मीद ही कर सकते हैं।** जातिवाद के अलावा और क्या वजह हो सकती है सीपीसीआर नहीं देने की? यदि मेडिकल अफ़सर को सीपीआर देना ही नहीं आता है तो यह स्कूल की घोर लापरवाही है। यदि शिक्षक-शिक्षिकाएँ और मेडिकल अफ़सर तक कोई भी इस तरह के आपातकालीन संकट से निपटने के लिए प्रशिक्षित नहीं है तो स्कूल प्रशासन स्कूल में पढ़ने वाले सभी बच्चों की जिन्दगी के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं।

मोटी-मोटी फीस लेने वाले ये निजी स्कूल सरकार से शिक्षा के नाम पर सस्ती ज़मीन, बिजली और पानी हासिल करते हैं और मुनाफ़े की हवस में बेहद अप्रशिक्षित और अयोग्य लोगों को बेहद कम तनख्वाहों पर काम पर रखते हैं जो इस तरह के संकट से निपटने में अक्षम होते हैं। स्कूल प्रशासन की इस ग़ैर-ज़िम्मेदारी, लापरवाही और लचर व्यवस्था ने एक मासूम बच्चे की जान ले ली और एक माँ की गोद सूनी कर दी। प्रिन्स की हत्या हुई है और हत्यारा स्कूल प्रशासन है।

इसके अलावा प्रिन्स के अचेत हो कर गिरने से ले कर उसे दो अस्पताल तक ले जाने तक माँ-पिता को स्कूल प्रशासन ने एक बार भी सूचित नहीं कर घोर ग़ैर-ज़िम्मेदारी का परिचय दिया है। यह तय बात है कि स्कूल प्रशासन माँ-पिता को सूचना नहीं देने की हिम्मत इसलिए कर सका क्योंकि उसे पता था की प्रिन्स एक ग़रीब दलित परिवार से आता था। चिन्मय स्कूल प्रशासन आश्वस्त था कि ग़रीबों के साथ कुछ भी कर वह आसानी से अपना पल्ला झाड़ लेगा।

चिन्मय प्रशासन की चाकरी में लगी रही पुलिस

चिन्मय स्कूल प्रशासन को बचाने के लिए पुलिस पूरी मुस्तैदी से खड़ी थी और आज भी खड़ी है। हमने चिन्मय स्कूल और विश्व हिन्दू परिषद के रिश्ते के बारे में बताया है। केंद्र की भाजपा सरकार आरएसएस के विभिन्न संगठनों जैसे विश्व हिन्दू परिषद, बजरंग दल, अखिल भारतीय छात्र परिषद आदि के दंगाई और जातिवादी राजनीति पर सवार हो कर 2014 से सत्ता में है। जब चिन्मय स्कूल का सीधा रिश्ता भाजपा सरकार से है तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि पुलिस चिन्मय प्रशासन को बचाने में एड़ी-चोटी का पसीना एक किये हुए है। प्रशासन की लापरवाही और ग़ैर-ज़िम्मेदारी पर पुलिस ने एक बार भी सवाल नहीं किया। वहीं प्रिन्स के लिए न्याय की माँग करने वाले लोगों पर मुकदमे दायर किये गये हैं। प्रिन्स की मौत के एक सप्ताह बाद तक पुलिस के बड़े अधिकारी **एसीपी** को उन शिक्षिकाओं का नाम तक पता नहीं था जो प्रिन्स के साथ अस्पताल में थी। इस रिपोर्ट के लिखे जाने तक अधूरी पोस्ट-मॉर्टम रिपोर्ट आयी है जिसमें मौत की वजह नहीं दी गयी है। चिन्मय स्कूल गेट पर धरने के दौरान लगातार पुलिस का प्रयास था प्रिन्स के माँ-पिता का मुँह पैसे देकर बन्द करने का। निश्चित ही इस रकम की पेशकश चिन्मय स्कूल प्रशासन ने की होगी जिसकी दलाली पुलिस कर रही थी। वहीं दूसरी ओर पूरी बर्बरता के साथ न्याय की आवाज़ दबाने में पुलिस ने कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। 16 दिसम्बर 2024 को पटियाला हाउस न्यायालय में इस मामले की पहली सुनवाई थी। यहाँ भी पुलिस ने जाँच-पड़ताल या स्कूल प्रशासन से तहकीकात की कोई बात प्रस्तुत नहीं की है।

कुसुमपुर पहाड़ी के लोगों की एकता और संघर्ष

प्रिन्स की मौत की खबर मिलने के बाद से ही कुसुमपुर पहाड़ी की जनता इस अन्याय के खिलाफ़ चिन्मय स्कूल के गेट पर 10 बजे सुबह से ही इकट्ठा होने लगी थी। पूरे दिन लोग वहाँ बने रहे और पुलिस कार्रवाई की माँग करते रहे। देर रात तक एफ़आईआर लिखे जाने तक लोगों की संख्या बढ़ती जा रही थी। रात भर लोग स्कूल की गेट पर बने रहे। अगले दिन सुबह तक प्रिन्स के लिए न्याय की माँग करती कुसुमपुर पहाड़ी के लोग भारी संख्या स्कूल गेट पर आ गये थे। पुलिस को बढ़ती संख्या से दहशत हो रही थी। बार-बार वह लोगों को वापस जाने की बात कह रही थी। लेकिन लोग बने रहे और उनकी संख्या बढ़ती रही। पुलिस को डर था कि बड़ी ख़बर बन जाने पर चिन्मय स्कूल प्रशासन को बचा पाना आसान नहीं होगा। प्रिन्स की मौत में स्कूल प्रशासन की लापरवाही, ग़ैर-ज़िम्मेदारी और लचर व्यवस्था की भूमिका एकदम साफ़ है। लेकिन देश में 80 शाखाओं वाले इस स्कूल की छवि बचाना पुलिस की प्राथमिकता थी। वहीं कुसुमपुर की जनता पुलिस के सामने पूरी हिम्मत से खड़ी रही। कुसुमपुर की औरतें पुलिसकर्मियों से लगातार एक ही सवाल कर रही थी कि अगर प्रिन्स की जगह तुम्हारा बेटा होता तो तुम क्या करते? इसका जवाब पुलिस के पास नहीं था। कुसुमपुर के लोगों का जमा गुस्सा जो उनके बच्चे और वे खुद ईडब्ल्यूएस कोटा के तहत बड़े स्कूलों में दाखिले के बाद झेलते हैं वह फूट पड़ा था। साथ ही उनका गुस्सा पुलिस पर भी था जो छोटे-से-छोटे मामले में वहाँ के लोगों पर दसियों धराएँ लगा देती है लेकिन इतने भयंकर गुनाह में उन्हें धराएँ नहीं मिल रही थी। लोगों पर पुलिस ने बर्बर लाठीचार्ज किया लेकिन लोगों ने भी एकसाथ मिल कर पुलिस का जम कर मुक़ाबला किया।

चुनावबाज़ पार्टियों के घड़ियाली आँसू और भीम आर्मी की खोखली सांत्वना

4 दिसम्बर की लाठीचार्ज के बाद प्रिन्स की हत्या एक ख़बर बन गयी।

(पेज 14 पर जारी)

चिन्मय स्कूल प्रशासन की आपराधिक लापरवाही से प्रिन्स की मौत

(पेज 13 से आगे)

इसके बाद विभिन्न पार्टियों के नेताओं और बड़े मन्त्रियों की प्रिन्स के परिवार वालों से मिलने की लाइन लग गयी। दिल्ली की मुख्यमन्त्री आतिशी मारलेना मिलने आयीं और मामले की जाँच करने के लिए एक कमेटी के गठन की घोषणा भी कर दी। लेकिन वायदे के 15 दिन से ऊपर होने के बाद भी अभी तक किसी कमेटी की कोई ख़बर नहीं है। वैसे आतिशी पहले खुद शिक्षा मन्त्री थीं। लेकिन आम आदमी पार्टी के लिए स्कूलों में ईडब्ल्यूएस कोटा का प्रावधान कर ही मानो शिक्षा की ज़िम्मेदारी पूरी हो गयी है। अगर सरकारी स्कूलों में एक समान शिक्षा का इन्तज़ाम होता तो ईडब्ल्यूएस कोटा की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। खैर, अभी तक प्रिन्स के माँ-बाप तमाम नेता-मन्त्रियों के वायदों की असलियत समझ चुके हैं। वहीं भीम आर्मी की असलियत भी सामने आ गयी है। **एक-दो दिन कुछ रस्मअदायगी करने और गर्म-गर्म भाषण देने के बाद गधे के सर पर सींग की तरह भीम आर्मी ग़ायब हो गयी है।** असल बात है इनमें से किसी को भी इस मामले में नाम और वोट कमाने की ज्यादा गुंजाइश नज़र नहीं आयी इसलिए सब किनारे हो गये हैं चाहे आम आदमी पार्टी हो या भीम आर्मी। जाति के नाम पर राजनीतिक गोटियाँ लाल करने वाली भीम आर्मी टाइप पार्टियाँ भी ग़रीब दलित आबादी को महज़ वोट बैंक की तरह देखती हैं। आज यह बात प्रिन्स के परिवार वाले अच्छे से समझ रहे हैं और देश की ग़रीब दलित आबादी भी ऐसे तमाम अनुभवों से समझ रही है। प्रिन्स के माँ-बाप समझ रहे हैं की दलित समुदाय और एक परिवार का नाम लेकर आयी भीम आर्मी भी अपने फ़ायदे के लिए आई थी। चिन्मय स्कूल प्रशासन को बचाने के पीछे जब भाजपा सरकार ही है तो इनकी सच्चाई को क्या उजागर करना लेकिन स्कूल पर धरने के दौरान 3 दिसम्बर की रात महरौली के विधान सभा चुनावों के लिए भाजपा उम्मीदवार रूबी फोगाट डिज़ाइनर कपड़ों और भारी मेकअप के साथ आयी थी और आरडब्ल्यूपीआई के कार्यकर्ताओं पर लाश के नाम पर राजनीति करने का आरोप लगा रही थी। कुसुमपुर की जनता ने रूबी फोगाट को वहाँ से खदेड़ दिया। इन सभी पार्टियों के लिए मज़दूर-मेहनतकश, ग़रीब, ग़रीब दलित बस एक वोट होते हैं। आरएसएस जैसे संगठन इस आबादी में जाति-धर्म के नाम पर दंगे भड़काने वाली फ़ौज तैयार करते हैं। मज़दूरों मेहनतकशों को इन चुनावबाज़ पार्टियों से इतर अपना स्वतन्त्र पक्ष खड़ा करना चाहिए।

15 दिसम्बर जन्तर-मन्तर पर प्रदर्शन

प्रिन्स को न्याय दिलाने के जिस संघर्ष की शुरुआत कुसुमपुर की जनता ने की थी और उसके अगले कदम के तौर पर 15 दिसम्बर जन्तर-मन्तर जाने का तय किया गया। इसके लिए आरडब्ल्यूपीआई के कार्यकर्ताओं ने पर्चे के साथ गली-गली अभियान चलाया। लोगों ने प्रिन्स को न्याय दिलाने और सबको एक समान और निःशुल्क शिक्षा की माँग का समर्थन भी किया। लेकिन इस दौरान ही अन्दोलन को कमज़ोर करने के लिए कई अफ़वाहें का बाज़ार गर्म होने लगा जैसे प्रिन्स के माँ-पिता ने कई लाख रुपये ले लिये हैं या कि उनको सरकारी नौकरी मिल गयी है। कहीं से यह भी बात निकल पड़ी कि इस प्रतिरोध अन्दोलन में शामिल होने से ईडब्ल्यूएस कोटे से दाखिला प्राप्त बच्चों की पढ़ाई पर असर पड़ेगा, उनका भविष्य ख़राब होगा तो कुछ कहने लगे इस प्रतिरोध के कारण सरकार ईडब्ल्यूएस कोटा ही हटा देगी। ऐसे ही और कई अफ़वाहें और असुरक्षा की बातें कुसुमपुर में उड़ने लगी थीं। आरडब्ल्यूपीआई के कार्यकर्ताओं ने इन अफ़वाहों की सच्चाई बतायी लेकिन लोगों में अविश्वास और डर बैठने लगा था। मज़दूर-मेहनतकश वर्ग को यह समझना होगा कि हमें जो कुछ भी हासिल होना है वह संघर्ष से ही हासिल होता है। लेकिन बिना एकता और सही राजनीतिक समझदारी के संघर्ष नहीं होता है। ऊपर बैठे लोग हमारे बीच असुरक्षा, शक और भय का माहौल गर्म करते हैं ताकि हम एकजुट हो कर संघर्ष न करें। इन अफ़वाहों ने और जनता के बीच किसी भी संघर्ष के प्रति बढ़ती निराशा ने 15 दिसम्बर में लोगों की भागीदारी को प्रभावित किया। लेकिन लोग जन्तर-मन्तर पर विरोध प्रदर्शन में शामिल हुए। प्रदर्शन के बाद सागर और नीतू की ओर से शिक्षा मन्त्रालय को ज्ञापन सौंपा गया।

प्रिन्स के मामले की वर्तमान स्थिति

प्रिन्स का मामला अब न्यायालय में जा चुका है और 16 दिसम्बर को पटियाला हाउस कोर्ट में इस केस की पहली सुनवाई थी। जज ने प्रिन्स के परिवार से उनके पास मौजूद सारे कागज़ात मँगवाये हैं। लेकिन अभी तक पुलिस की तहकीकात का कुछ पता नहीं है।

निष्कर्ष

प्रिन्स को न्याय दिलाने से शुरू हुए इस आन्दोलन के दौरान कई अभिभावकों और बच्चों ने निजी और सरकारी स्कूलों में पैसे और जाति के नाम पर होने वाले भेद-भाव के बारे में बताया। सागर और नीतू ने भी बताया था कि प्रिन्स की जिस बच्चे से मार-पीट हुई थी वह पहले भी प्रिन्स को जाति सूचक अपशब्द कहा करता था जिसकी शिकायत उन्होंने क्लास टीचर से की थी। शिक्षा का अधिकार मूलभूत अधिकार है और एक समान शिक्षा व निःशुल्क शिक्षा की ज़िम्मेदारी सरकार की ज़िम्मेदारी है। ईडब्ल्यूएस कोटा का फ़र्ज़ीवाडा हमारी आँखों पर पर्दा डालने के लिए है। समान और निःशुल्क शिक्षा के अलावा स्कूलों में वर्ग, जाति, धर्म, राष्ट्र-राष्ट्रीयता, क्षेत्र, भाषा और खान-पान आधारित कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए। चिन्मय स्कूल में प्रिन्स की मौत के पीछे उसका ग़रीब होना और ग़रीब दलित होने मुख्य कारण था। यह भेदभाव आधारित शिक्षा व्यवस्था हमारे बच्चों के विकास और उनकी मानसिकता को बहुत गहरे प्रभावित कर रही है। आन्दोलन के दौरान कार्यकर्ताओं व कुसुमपुर पहाड़ी की जनता ने सरकार से एक समान और निःशुल्क शिक्षा की माँग की है। इसके अलावा स्कूल के अन्दर बच्चों के साथ होने वाले भेदभाव को ख़त्म करने के लिए शिक्षा के अधिकार (आरटीई) अधिनीयम के तहत विशेष प्रावधान ला कर स्कूल के में भेदभाव के लिए दोषी पाये गये किसी भी व्यक्ति के लिए सज़ा का इन्तज़ाम करने की माँग की है। इस तरह के किसी भी भेदभाव की जाँच-पड़ताल के लिए स्कूल के स्तर पर अभिभावकों की चुनी हुई चौकसी कमेटियों की भी माँग हमने की है। इन सभी के अलावा प्रिन्स की निष्पक्ष और स्वतंत्र जाँच-पड़ताल के लिए दिल्ली सरकार से चिन्मय स्कूल के स्तर पर अभिभावकों की कमेटी के गठन की माँग भी की है जिसमें कुसुमपुर पहाड़ी के अभिभावक समान अनुपात में रहें। आगे आने वाले समय में आरडब्ल्यूपीआई और दिशा छात्र संगठन इस संघर्ष को और व्यापक बनाएँगे।

बढ़ती बेरोज़गारी के शिकार छात्रों-युवाओं पर टूटता फ़ासीवादी कहर

बिहार और उत्तराखण्ड में छात्रों पर बरसी लाठियाँ

● ध्रुव

मौजूदा फ़ासीवादी निज़ाम में छात्रों-युवाओं पर हमलों के हर दिन नये रिकॉर्ड क़ायम हो रहे हैं। पिछले दिनों इलाहाबाद में चल रहे यूपीपीसीएस/आरओ-एआरओ परीक्षार्थियों के आन्दोलन और पुलिस के दमन का मामला अभी ठण्डा भी नहीं हुआ था कि उसके बाद बिहार और उत्तराखण्ड में छात्रों के दमन का मामला सामने आ गया।

अभी कुछ ही दिनों पहले छात्र बिहार लोक सेवा आयोग की परीक्षा को दो पाली में कराये जाने और नॉर्मलाइजेशन की प्रक्रिया को लागू करने के ख़िलाफ़ सड़कों पर उतरे थे। हालाँकि बिहार लोक सेवा आयोग की तरफ़ से ऐसा कोई आधिकारिक नोटिस नहीं जारी किया गया था लेकिन सोशल मीडिया के माध्यम से छात्रों के बीच यह बात पहुँची कि बिहार लोक सेवा आयोग की परीक्षा इस बार दो पाली में करायी जायेगी। इसके बाद से ही छात्रों की आवाज़ इसके ख़िलाफ़ उठने लगी। छात्रों का कहना था कि सरकार गुप्त रूप से नॉर्मलाइजेशन की प्रक्रिया को लागू करना चाहती है जिस वजह से परीक्षा का मूल्यांकन न्यायपूर्ण नहीं हो पायेगा। क्योंकि इस प्रक्रिया में इस बात की कोई गारण्टी नहीं होती की एक छात्र ने जितने अंक का प्रश्न किया है उसे उतना ही अंक मिलेगा। बड़ी संख्या में छात्र इसके ख़िलाफ़ सड़क पर उतरे और उन्होंने सरकार से माँग की कि बीपीएससी की परीक्षा एक पाली में ही करायी जाये। लेकिन शुरू में सरकार और प्रशासन ने छात्रों की माँगों को मानने के बजाय उनके प्रदर्शन को कुचलने का काम किया। छात्रों पर लाठी और डण्डे बरसाए गये। इस दौरान बहुत से छात्र-युवा गम्भीर रूप से घायल हुए। लेकिन इतने दमन के बावजूद छात्र सड़क पर डटे रहे और अन्ततः बिहार लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष रवि. एस. परमार को 6 दिसम्बर को बयान जारी करना पड़ा कि बीपीएससी की परीक्षा में कोई नॉर्मलाइजेशन की प्रक्रिया नहीं अपनायी जायेगी।

इसके कुछ दिनों पहले ही यूपीपीसीएस और आरओ-एआरओ की परीक्षा में नॉर्मलाइजेशन के ख़िलाफ़ इलाहाबाद में लोक सेवा आयोग के सामने हजारों छात्रों ने विरोध प्रदर्शन किया था। वहाँ भी छात्रों के आन्दोलन को कुचलने का भरपूर प्रयास किया गया लेकिन छात्रों की एकजुटता ने आंशिक जीत हासिल की। वास्तव में आये दिन इस तरह की क़वायदों के ज़रिये भ्रष्टाचार के लिए दरवाज़े खोलने और पूरे परीक्षा तन्त्र को चौपट करने के नये-नये रास्ते ईज़ाद किये जा रहे हैं। नॉर्मलाइजेशन की प्रक्रिया लागू होने से सीटों को बेचने और धाँधली करने का सबसे सुरक्षित ज़रिया बन जाता है। इसीलिए पब्लिक सर्विस कमीशन जैसी परीक्षाओं में भी नॉर्मलाइजेशन की प्रक्रिया को लागू करने की कोशिश की जा रही है। दरअसल आज देश भर में ही बेरोज़गारी का एक भयानक संकट मौजूद है। फ़ासीवादी मोदी सरकार आज तमाम सरकारी विभागों को अपने आका पूँजीपतियों को औने-पौने दामों पर बेचने का काम कर रही है। तमाम विभागों में सीटों की संख्या लगातार घटायी जा रही है। परमानेंट काम की गारण्टी लगातार ख़त्म होती जा रही है। बेरोज़गारी के इस भयानक संकट को हम हाल के ही एक उदाहरण से भी समझ सकते हैं।

इसी तरह उत्तराखण्ड में प्रादेशिक सेना के मात्र 113 पदों की भर्ती के लिए लगभग 20,000 छात्र रोडवेज की बसों किसी तरह लदकर उत्तर प्रदेश से पहुँचे थे। जिसके वीडियो भी काफ़ी वायरल हुए। उत्तराखण्ड की पुष्कर सिंह धामी की सरकार और पुलिस प्रशासन की बदइन्तज़ामी की वजह से काफी बुरी स्थिति पैदा हुई और हालात को काबू करने के लिए पुलिस ने छात्रों पर ही लाठी-डण्डे बरसाने शुरू कर दिए। इसमें कई छात्र गम्भीर रूप से घायल भी हुए थे।

अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर संगठन की रिपोर्ट बताती है कि भारत में 83 प्रतिशत युवा आबादी बेरोज़गार है। जिसकी वजह से जिसके पास पैसा, पावर और पहुँच है वो बड़े-बड़े शिक्षा माफियाओं, नेता मन्त्री और अधिकारियों के साथ साठगाँठ करके परीक्षाओं में धाँधली करते हैं। जिसका नतीजा है कि पिछले 7 सालों में ही 80 से ज़्यादा परीक्षाओं में पेपर लीक की घटनाएँ सामने आ चुकी है। इससे सीधे तौर पर देश के एक करोड़ 80 लाख छात्र-युवा प्रभावित हुए हैं। फ़ासीवादी भाजपा सरकार छात्रों-युवाओं के लिए काल साबित हुई है। बेरोज़गारी के इस तूफ़ान ने करोड़ों छात्रों के भविष्य को अन्धकारमय बना दिया है। देश में अपराधों का रिकार्ड रखने वाली संस्था एनसीआरबी के आँकड़ों को देखें तो पता चला चलता है कि केवल वर्ष 2022 में 1 लाख 12 हज़ार छात्रों ने आत्महत्या की है। एक तरफ़ बेरोज़गारी जब विकराल रूप लेती जा रही है तो वहीं पर भर्तियों में भी तमाम तरीक़े के नये नियम लागू करके परिक्षाओं में चयन की प्रक्रिया को बेहद जटिल और मुश्किल बनाया जा रहा है। इसका ताज़ा उदाहरण इसी साल सितम्बर में झारखण्ड में हुई उत्पाद सिपाही भर्ती परीक्षा का है जिसमें दौड़ के नियमों में बदलाव करके 60 मिनट में 10 किलोमीटर दौड़ने का प्रावधान किया गया जबकि ये पहले 6 मिनट में 1600 मीटर था। इसका नतीज़ा ये हुआ कि दौड़ने के दौरान ही 12 छात्रों की मौत हो गयी। साफ़ है कि फ़ासीवादी मोदी सरकार छात्रों-युवाओं के हित में काम करने वाली नहीं बल्कि अपने आका पूँजीपतियों की तिजोरी भरने वाली सरकार है। देश में पैसा-संसाधन होने बावजूद उसको रोज़गार पैदा करने के लिए न इस्तेमाल कर धन्नासेठों की जेबों को भरने का काम करती है। चाहे छात्र-युवा हों या मज़दूर-मेहनकतश, हर आबादी पर फ़ासीवादी भाजपा सरकार भयानक कहर ढ़ाने का काम कर रही है। इसके ख़िलाफ़ देश भर में छात्रों-युवाओं के गुस्से की अभिव्यक्ति सड़कों पर भी देखने को मिल रही है। आज ज़रूरत है कि इन आन्दोलनों को एक संगठित रूप दिया जाये और सबको पक्के रोज़गार के हक के लिए देश भर में बड़ा जनआन्दोलन खड़ा किया जाये। साथ ही इस सच्चाई को भी लोगों तक लेकर चला जाये कि लूट और मुनाफ़ पर टिकी मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था के ख़िलाफ़ लम्बी लड़ाई ही हमें इन समस्याओं से सही मायने में निज़ात दिला सकती है।

भोपाल गैस हत्याकाण्ड के 40 साल

मेहनतकशों के हत्याकाण्डों पर टिका मानवद्रोही पूँजीवाद!!

बिगुल डेस्क

भोपाल गैस त्रासदी के 40 साल बाद आज भी इस नरसंहार के ज़ख्म ताज़ा हैं और न्याय के लिए लोगों के संघर्ष ज़िन्दा है। 2 दिसम्बर को भोपाल में इस घटना से प्रभावित लोगों और कई संगठनों ने प्रदर्शन कर सरकार के सामने एक बार फिर अपनी माँगें रखी हालाँकि इस पूरे मसले में सरकार से लेकर न्याय व्यवस्था तक का चेहरा 1984 में ही साफ हो गया था।

2 दिसम्बर 1984 की रात को जो हुआ वह महज़ कोई दुर्घटना नहीं थी क्योंकि इस दिल दहला देने वाली घटना की पटकथा काफ़ी समय पहले से लिखी जा रही थी। मुनाफ़े की अन्धी हवस में अमेरिकी कम्पनी यूनियन कार्बाइड की भारतीय सब्सिडियरी यूसीआईएल चन्द पैसे बचाने के लिए सारे सुरक्षा उपायों को ताक पर रखकर मज़दूरों से काम करवा रही थी। मालूम हो कि नगरनिगम योजना के मानकों के अन्तर्गत भी इस फैक्ट्री को लगाना गलत था लेकिन मध्यप्रदेश सरकार ने यू.सी.सी. का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। 1979 तक फैक्ट्री ने काम भी शुरू कर दिया गया, लेकिन काम शुरू होते ही कई दुर्घटनाएँ हुई। दिसम्बर 1981, में ही गैस लीक होने के कारण एक मज़दूर की मौत हो गई और दो बुरी तरह घायल हो गये। लगातार हो रही दुर्घटनाओं के मद्देनज़र मई, 1982 में तीन अमेरिकी इंजीनियरों की एक टीम फैक्ट्री का निरीक्षण करने के लिए बुलाई गई। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में साफ कहा कि मशीनों का काफी हिस्सा ख़राब है, एवं गैस भण्डारण की सुविधा अत्यन्त दयनीय है जिससे कभी भी गैस लीक हो सकती है और भारी दुर्घटना सम्भव है। इस रिपोर्ट के आधार पर 1982 में भोपाल के कई अखबारों ने लिखा था कि 'वह दिन दूर नहीं, जब भोपाल में कोई त्रासदी घटित हो जाए।' फिर भी न तो कम्पनी ने कोई कार्रवाई की और न ही सरकार ने।

मिथाइल आइसोसायनाइड गैस जो इतनी ज़हरीली होती है कि उसकी बहुत छोटी मात्रा ही भण्डारित की जा सकती है, परन्तु उसका इतना बड़ा भण्डार रखा गया था जो शहर की आबादी को ख़त्म करने के लिए काफ़ी था। इतना ही नहीं सुरक्षा इन्तज़ामों में भी एक-एक करके कटौती की गयी थी। मिथाइल आइसोसायनाइड गैस को 0 से 5 डिग्री तापमान पर भण्डारित करना आवश्यक होता है। जबकि कूलिंग सिस्टम 6 महीने पहले से ही बन्द था। गैस टैंक के मेण्टेनेंस स्टाफ़ की संख्या को भी घटाकर आधा कर दिया गया था और गैस लीक होने की चेतावनी देने वाला सायरन भी बन्द कर दिया गया था। फ़ैक्टरी में काम करने वाले मज़दूर जानते थे कि शहर मौत के मुहाने पर खड़ा है और उन्होनें फ़ैक्टरी प्रशासन को कई बार इसपर कार्यवाही करने को चेताया भी था किन्तु उनकी सुनने वाला भला वहाँ कौन था?

यह गैस इतनी ज़हरीली थी कि पचासों वर्ग किलोमीटर के दायरे में मवेशी और पक्षी तक मर गये और ज़मीन और पानी तक में इसका ज़हर फैल गया। जो उस रात मौत से बच गये वे चालीस साल बाद आज भी तरह-तरह की बीमारियों से जूझ रहे हैं। इस ज़हर के असर से कई-कई वर्ष बाद तक उस पूरे इलाके में पैदा होने वाले बच्चे जन्म से ही विकलांग या बीमारियाँ लिये पैदा हो रहे हैं।

कीटनाशक कारख़ाने की टेक्नोलॉजी बेहद पुरानी पड़ चुकी थी और ख़तरनाक होने के कारण उसे अन्य देशों में ख़ारिज भी किया जा चुका था परन्तु हमारे देश के हुक्मरानों ने मौत के उस कारखाने को लगाने से पहले लाखों मज़दूरों की ज़िन्दगियों के बारे में सोचने का बीड़ा नहीं उठाया!

आज भी वहाँ की ज़मीन और पानी से इस ज़हर का असर ख़त्म नहीं हुआ है। कई अध्ययनों ने साबित किया है कि माँओं के दूध तक में यह ज़हर घुल चुका है।

गैस जिस दिन मौत बनकर शहर पर टूटी तो इस लापरवाही के ज़िम्मेदार सफ़ेदपोश कातिलों में से किसी को खरोंच तक नहीं आयी क्योंकि वे फ़ैक्टरी इलाक़े और मज़दूर बस्तियों से काफ़ी दूर अपने आलीशान इमारतों में सुरक्षा के तमाम इन्तज़ाम के साथ बैठे थे।

पूँजीवाद का पूरा इतिहास बर्बर हत्याकाण्डों और नृशंस जनसंहारों से भरा हुआ है। इस मानवद्रोही-मुनाफ़ाखोर व्यवस्था ने युद्धों के दौरान हिरोशिमा और नागासाकी को अंजाम दिया है तो जैसे शान्ति के दिनों में भोपाल जैसे जनसंहारों का इतिहास रचा है। कम से कम बीस हज़ार लोगों को मौत के घाट उतारने और करीब छह लाख लोगों को बीमारियों और विकलांगता का शिकार बनाने वाली यह घटना दुनिया की सबसे बड़े औद्योगिक हत्याकाण्डों में से एक है।

इस हादसे ने जहाँ इस बात को एक बार फिर रेखांकित कर दिया कि मालिकों के लिए मज़दूरों की ज़िन्दगी से बढ़कर उनका मुनाफ़ा होता है। मुनाफ़े में किसी भी तरह की रुकावट और कमी को रोकने के लिए सुरक्षा के सारे इन्तज़ाम ताक पर रख दिये जाते हैं। वहीं दूसरी तरफ भोपाल गैस त्रासदी ने पूँजीवादी न्याय व्यवस्था और तमाम बुर्जुआ पार्टियों की असलियत को भी उघाड़ कर रख दिया।

भोपाल में जिस समय लाशों के ढेर लगे थे और शहर के अस्पताल घायलों एवं विकलांगों से पटे पड़े थे, उसी समय तत्कालीन राज्य सरकार हत्यारे वारेन एण्डरसन को बेशर्मी के साथ ससम्मान अमेरिका भेजने की जुगत में लगी हुई थी और उस समय मध्यप्रदेश के मुख्यमन्त्री रहे अर्जुन सिंह इस मुद्दे पर अपना बचाव करते हुए कहते हैं कि क़ानून-व्यवस्था को बनाये रखने के लिए एण्डरसन को भोपाल से बाहर निकालना ज़रूरी था। यह बेहूदा तर्क देकर हज़ारों बेगुनाहों के हत्यारे एण्डरसन को देश से भगाने का काम सरकार की शह पर हुआ। भोपाल की घटना ने इस बात को दिखा दिया कि पूँजीवादी सरकारें पूँजीपति वर्ग की मैनेजिंग कमेटी होती हैं और पूँजीपति वर्ग और उनके हितों की रक्षा करना इनका सर्वोपरि कर्तव्य है। एण्डरसन के साथ ही कार्बाइड के भारतीय सब्सिडियरी के प्रमुख केशव महेन्द्रा सहित सभी बड़े अधिकारी भी जो इस नरसंहार के जिम्मेदार थे, उन्हें बचाने में पूरा सत्तातन्त्र ने अपनी जान लगा दी!

लाखों लोगों की मौत के ज़िम्मेदार लोगों पर 7 जून 2010 को भोपाल की एक निचली अदालत ने अपने फ़ैसले में कम्पनी के 8 पूँजीपतियों को 2-2 साल की सज़ा सुनायी और कुछ ही देर बाद उनकी जमानत भी हो गयी और वे ख़ुशी-ख़ुशी अपने घरों को लौट गये। दरअसल इन्साफ़ के नाम पर इस घिनौने मज़ाक़ की बुनियाद 1996 में भारत के भूतपूर्व प्रधान न्यायाधीश जस्टिस अहमदी द्वारा रख दी गयी थी जिसने कम्पनी और मालिकान पर आरोपों को बेहद हल्का बना दिया था और उन पर मामूली मोटर दुर्घटना के तहत लागू होने वाले क़ानून के तहत मुक़दमा दर्ज़ किया गया जिसमें आरोपियों को 2 साल से अधिक की सज़ा नहीं दी जा सकती और इसके बदले में अहमदी को भोपाल गैस पीड़ितों के नाम पर बने ट्रस्ट का आजीवन अध्यक्ष बनाकर पुरस्कृत किया गया। कई वर्ष बाद सरकार ने कम्पनी के साथ शर्मनाक समझौता किया जिसके तहत कम्पनी ने 47 करोड़ डॉलर का जुर्माना देकर लोगों की मौत और ज़िन्दगियों का सौदा किया।

इस भयावह नरसंहार के इतने सालों बाद भी दोषी धड़ल्ले से आज़ाद घूम रहे हैं और इस त्रासदी से प्रभावित लोग धीमी मौत मरने के लिए मजबूर है।

भोपाल हादसे को चालीस बरस हो गये मगर इस बीच अनेक छोटे-छोटे भोपाल देशभर में होते रहे हैं। मुनाफ़े की अन्धाधुन्ध हवस में मज़दूरों और आम लोगों की मौत होती रहती है, जिनमें से कुछ अख़बारों की सुर्ख़ियाँ बनती हैं, मगर बहुतों की तो ख़बर तक नहीं हो पाती। हमें यह नहीं भूलना होगा कि जब तक पूँजीवाद रहेगा, भोपाल जैसे हादसे होते रहेंगे। फ़ासीवादी भाजपा सरकार के पिछले दस साल इस देश के मज़दूरों-मेहनतकशों के लिए बाद से बदतर हुए हैं,औद्योगिक हादसो की बात करें तो उसकी संख्या में भी काफी बढ़ोतरी हुई है।

भारत सरकार के श्रम मन्त्रालय की एक रिपोर्ट बताती है कि बीते पाँच वर्षो में 6500 मज़दूर फैक्ट्री, खदानों, निर्माण कार्य में हुए हादसों में अपनी जान गवाँ चुके हैं। इसमें से 80 प्रतिशत हादसे कारखानों में हुए। 2017-2018 कारखाने में होने वाली मौतों में 20 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। साल 2017 और 2020 के बीच, भारत के पंजीकृत कारखानों में दुर्घटनाओं के कारण हर दिन औसतन तीन मज़दूरों की मौत हुई और 11 घायल हुए। 2018 और 2020 के बीच कम से कम 3,331 मौतें दर्ज़ की गयी। आँकड़ों के मुताबिक, फैक्ट्री अधिनियम, 1948 की धारा 92 (अपराधों के लिए सामान्य दण्ड) और 96ए (ख़तरनाक प्रक्रिया से सम्बन्धित प्रावधानों के उल्लंघन के लिए दण्ड) के तहत 14,710 लोगों को दोषी ठहराया गया, लेकिन आँकड़ों से पता चलता है कि 2018 और 2020 के बीच सिर्फ़ 14 लोगों को फैक्ट्री अधिनियम, 1948 के तहत अपराधों के लिए सज़ा दी गयी। यह आँकड़े सिर्फ़ पंजीकृत फैक्ट्रियों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जबकि दिल्ली और पूरे देश में लगभग 90 फ़ीसदी श्रमिक अनौपचारिक क्षेत्र से जुड़े हैं और अनौपचारिक क्षेत्र में होने वाले हादसों के बारे में कोई पुख़्ता आँकड़े नहीं हैं।

मई 2022 में भारत की राजधानी नई दिल्ली के मुंडका इलाके में एक चार मंजिला इलेक्ट्रॉनिक्स फैक्ट्री में भीषण आग लग गई। इस हादसे में 27 लोगों की जान चली गई और ऐसी औद्योगिक दुर्घटनाओं आम बात बनती जा रही हैं जिसमें हर साल हजारों लोग मारे जाते हैं या फिर बीमारियों या विकलांगता की चपेट में आते हैं। बुनियादी सुरक्षा उपायों की कमी के कारण भारतीय कारखानों में हर दिन औसतन तीन कामगारों की मौत हो जाती है और मोदी सरकार द्वारा बचे-खुचे श्रम क़ानूनों को ख़त्म करने के बाद तो मज़दूरों की ज़िन्दगी के साथ खिलवाड़ को खुली छूट मिल जाएगी।

नए लेबर कोड के तहत 'व्यावसायिक सुरक्षा, स्वास्थ्य और कार्यस्थल स्थिति संहिता' में नाम के उलट मज़दूरों की सुरक्षा के साथ खिलवाड़ को क़ानूनी रूप दे दिया जाएगा क्योंकि इसमें सुरक्षा समिति बनाये जाने के काम को सरकार के विवेक पर छोड़ दिया गया है, जो पहले कारख़ाना अधिनियम, 1948 के हिसाब से अनिवार्य था। पुराने क़ानून में स्पष्ट किया गया था कि मज़दूर अधिकतम कितने रासायनिक और विषैले माहौल में काम कर सकते हैं, जबकि नये कोड में रासायनिक और विषैले पदार्थों की मात्रा का साफ़-साफ़ ज़िक्र करने के बजाय उसे निर्धारित करने का काम राज्य सरकारों के ऊपर छोड़ दिया गया है। मालिकों की सेवा में सरकार इस हद तक गिर गयी है कि इस कोड के मुताबिक़, अगर कोई मालिक, मज़दूरों के लिए तय किये गये काम के घण्टे, वेतन और अन्य ज़रूरी सुरक्षा सुविधाओं की शर्तें नहीं पूरी करता है तो भी उसे 'कार्य-विशिष्ट' का लाइसेंस दिया जा सकता है। यानी, अब क़ानूनी और खुले तौर पर इस देश के मेहनतकशों को अपना जीवन मालिकों के मुनाफ़े की भेंट चढ़ाना होगा।

फ़ासीवादी दौर में मेहनतकश जनता के मानवीय अधिकारों तथा जीने के अधिकारों का छीने जाना, उनकी लूट, दमन और हादसों के खिलाफ़ कोई क़ानूनी कार्यवाही कर सकना असम्भव हो गया है।

भोपाल गैस हत्याकाण्ड पूँजीवादी व्यवस्था की क्रूरता की असलियत को दिखाता है। और साथ ही विधायिका से लेकर कार्यपालिका, न्यायपालिका तक के मज़दूर-विरोधी चरित्र को सरेआम बेपर्द करता है। मुनाफ़ाखोर व्यवस्था का यह भयानक इतिहास चीख़-चीख़कर इस मानवद्रोही व्यवस्था को जड़ से उखाड़ फेंकने की माँग करता है।

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2023-2026
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

लार्सन एण्ड टूब्रो कम्पनी के चेयरमैन की इच्छा : "राष्ट्र के विकास" के लिए हफ़्ते में 90 घण्टे काम करें मज़दूर व कर्मचारी!

● केशव

लार्सन एण्ड टूब्रो कम्पनी के चेयरमैन एस. एन. सुब्रमण्यन ने अपने हालिया बयान में यह कहा है कि उनके कर्मचारियों को हफ़्ते में 90 घण्टे काम करना चाहिए। आम मेहनतकश आबादी की मेहनत की लूट पर अय्याशी करने वाले इस शख़्स ने यह भी कहा कि उसके कर्मचारियों को इतवार के दिन भी काम करना चाहिए। आगे उसने कहा, "अपनी पत्नी को कितनी देर निहारोगे? ऑफ़िस आकर काम करो।" साथ ही उसने यह भी कहा कि अगर उसका बस चले तो वह लोगों से इतवार को भी काम कराये। जी हाँ दोस्तों! इन धनपशुओं का बस चले तो ये हमारे ख़ून का आख़िरी कतरा भी निचोड़कर अपनी अय्याशी और मुनाफ़े की मीनारें खड़ी करें। इन रक्तपिपासु धनपशुओं के लिए मज़दूरों-मेहनतकशों के जीवन का कोई मोल नहीं है। अभी कुछ दिनों पहले की ही बात है जब इंफोसिस के डायरेक्टर महोदय ने नौजवानों को हर हफ़्ते 70 घण्टे काम करने की राय दी थी। इस बार लार्सन एण्ड टूब्रो के चेयरमैन ने उन्हें चुनौती देते हुए 20 घण्टे अतिरिक्त अपनी ओर से जोड़े हैं। आने वाले वक्त में अगर कोई पूँजीपति यह कह दे कि हफ़्ते के सातों दिन, चौबीसों घण्टे काम करने की ज़रूरत है, तो भी आपको अचम्भित होने की ज़रूरत नहीं है। मुनाफ़े की हवस ने इन पूँजीपतियों के भीतर से इंसान होने की पूर्वशर्तें निकाल फेंकी हैं, और बची-खुची कसर आर्थिक संकट ने पूरी कर दी है।

हम मज़दूरों को समझ लेना चाहिए कि पूँजीपति वर्ग के लिए हमारा अस्तित्व उनके मुनाफ़े की तिजोरी भरने से अधिक कुछ भी नहीं है। कारख़ानों, ऑफिसों और वर्कशॉपों में हमारी हड्डी गलाकर वे अपना मुनाफ़ा पीटते हैं, और इसलिए हमसे अधिकतम श्रम निचोड़कर वे मुनाफ़े के संकट से उबरने की कोशिशें कर रहे हैं। पूँजीपति वर्ग कैसे हमारी मेहनत को लूटकर अपनी तिजोरियाँ भरता है, इसके लिए हम राजनीतिक अर्थशास्त्र के कुछ नुक्तों से समझेंगे। हम सब जानते हैं कि पूँजीवाद के दौर में माल उत्पादन (अर्थात् विनिमय के लिए किया गया उत्पादन) उत्पादन का प्रमुख तरीक़ा बन जाता है। हमारी श्रमशक्ति भी एक माल में तब्दील हो जाती है, जिसे हम पूँजीपतियों को बेचने को बाध्य होते हैं क्योंकि उत्पादन के सभी साधनों का मालिकाना उन्हीं के पास होता है। ऊपर से यह दिखता है कि हमारे और मालिकों के बीच बराबरी का विनिमय हो रहा है, हम उसे अपना "श्रम" बेच रहे हैं, बदले में हमें उसके बराबर मज़दूरी मिल रही है। हमें यह बताया जाता है कि कारख़ानों में मालिकों के लिए 12-12 घण्टे खटने के बाद हमें जो उजरत मिलती है, वह हमारी मेहनत के बराबर है। लेकिन अगर ऐसा होता कि पूँजीपति हमसे जितना लेता है, उतना ही हमें वापस कर देता है, तो उसका मुनाफ़ा कहाँ से आता?

सच्चाई यह है कि हमें जो उजरत मिलती है, वह हमारे द्वारा किये गये श्रम के बदले नहीं, बल्कि श्रमशक्ति के बदले मिलती है, यानी एक दिन हमारे काम करने की क्षमता के बदले में। यानी हमारे (यानी मज़दूर वर्ग के) जीविकोपार्जन के लिए हमारे द्वारा किये गये श्रम का जितना न्यूनतम हिस्सा ज़रूरी होता है, उतना पूँजीपति वर्ग हमें देता है, बाक़ी का वह मुनाफ़े के रूप में अपनी तिजोरी में डाल लेता है।

'क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षण माला 13: पूँजीवादी उत्पादन: श्रम प्रक्रिया के रूप में और मूल्य-संवर्धन प्रक्रिया के रूप में' में साथी अभिनव इसे ही समझाते हुए लिखते हैं:

"माल के मूल्य और पूँजीपति द्वारा निवेश की गयी कुल पूँजी, यानी श्रमशक्ति के मूल्य और उत्पादन के साधनों के मूल्य के योग, के बीच का अन्तर ही बेशी मूल्य या अतिरिक्त मूल्य (surplus value) होता है। मिसाल के तौर पर, मान लें कि एक मज़दूर को अपनी श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन, यानी अपने व अपने परिवार के जीविकोपार्जन के लिए रु. 40 प्रति घण्टा की आवश्यकता होती है। यदि कार्यदिवस की लम्बाई 8 घण्टे है तो उसे एक दिन में रु. 320 की दिहाड़ी के रूप में आवश्यकता होती है, ताकि वह अगले दिन फिर आकर कारखाने में खट सके। लेकिन वह 8 घण्टे के कार्यदिवस के आधे हिस्से यानी 4 घण्टे में ही रु. 320 के बराबर मूल्य, यानी अपनी मज़दूरी के बराबर मूल्य के बराबर माल पैदा कर देता है। इसके बाद के 4 घण्टे में उसी उत्पादकता व श्रम सघनता के साथ काम करते हुए वह रु. 320 के बराबर मूल्य बेशी पैदा करता है। यह रु. 320 अतिरिक्त मूल्य या बेशी मूल्य या surplus value है। यह पूँजीपति की जेब में मुफ़्त में जाता है, जिसके बदले में वह मज़दूर को कुछ भी नहीं देता। ऐसा क्यों सम्भव होता है?

"इसलिए क्योंकि पूँजीपति ने मज़दूर से उसका श्रम नहीं ख़रीदा है, बल्कि श्रमशक्ति ख़रीदी है। अगर उसने मज़दूर से श्रम ख़रीदा होता, यानी, जितना श्रम मज़दूर से लिया होता, मूल्य के रूप में उतना ही श्रम मज़दूर को मेहनताने के तौर पर दिया होता, तो पूँजीपति के पास कोई मुनाफ़ा नहीं बचता। लेकिन चूँकि वह मज़दूर की श्रमशक्ति, यानी एक कार्यदिवस भर काम करने की क्षमता को ख़रीदता है और चूँकि यह क्षमता एक कार्यदिवस से कम समय में पुनरुत्पादित हो जाती है, इसलिए पूँजीपति कार्यदिवस के बाकी बचे समय यानी बेशी श्रमकाल में पैदा होने वाले मूल्य को बेशी मूल्य के रूप में हड़प लेता है। लेकिन औपचारिक तौर पर पूँजीपति और मज़दूर के बीच कोई असमान विनिमय नहीं हुआ होता। यहाँ मूल बात यह समझना है कि पूँजीपति मज़दूर से क्या ख़रीदता है: श्रम या श्रमशक्ति। श्रम को नहीं ख़रीदा जा सकता क्योंकि श्रम का कोई मूल्य नहीं होता; वजह यह कि श्रम स्वयं मूल्य का सारतत्व है, वही मूल्य है।

"इस प्रकार मज़दूर पहले अपनी मज़दूरी के बराबर मूल्य को पैदा करता है और फिर उसके ऊपर बेशी मूल्य भी पैदा करता है। यह प्रक्रिया एक ही कार्यदिवस में सम्पन्न होती है और ऊपर से देखने पर इन दोनों के बीच का अन्तर फ़ौरन समझ नहीं आता है। मूल्य संवर्धन की प्रक्रिया एक एकल सजातीय कार्यदिवस में लगातार जारी रहती है और पहले उसमें श्रमशक्ति के बराबर मूल्य का उत्पादन होता है और फिर बेशी मूल्य का। कहने का अर्थ है कि मज़दूर जिस श्रमकाल में अपनी मज़दूरी के बराबर मूल्य पैदा करता है, यानी आवश्यक श्रमकाल (क्योंकि वह श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन के लिए अनिवार्य है) और बेशी या अतिरिक्त श्रमकाल (जिसमें वह पूँजीपति के लिए बिना किसी मेहनताने मुफ्त में बेशी मूल्य पैदा करता है) के बीच कोई भौतिक तौर पर दिखायी देने वाला अन्तर नहीं होता। वह दिक् और काल में निरन्तरतापूर्ण है, अलग-अलग नहीं। यह पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्था की विशिष्टता होती है।"

आर्थिक संकट के दौर में पूँजीपति वर्ग अपना मुनाफ़ा बचाने की कोशिश में मज़दूरों के काम के घण्टे को सापेक्षिक रूप से बढ़ाने की कोशिश करता है, ताकि अधिक से अधिक अतिरिक्त श्रमकाल के ज़रिये वह अधिक से अधिक मुनाफ़ा निचोड़ सके और मुनाफ़े की दर को बढ़ा सके। इसके लिए वह मज़दूरों से अधिक से अधिक अतिरिक्त श्रम की माँग करता है। श्रम की उत्पादकता में कोई ख़ास वृद्धि न होने पर कार्यदिवस की लम्बाई को बढ़ाकर अतिरिक्त श्रमकाल और बेशी मूल्य को निरपेक्ष रूप से बढ़ाने के तरीक़े का पूँजीपति वर्ग विशेष तौर पर मन्दी के समय और भी ज़्यादा इस्तेमाल करता है। साथ ही, जब भी सम्भव हो तो वह मज़दूर वर्ग के ही सामूहिक श्रम से पैदा होने वाली उन्नत तकनोलॉजी और मशीनों का इस्तेमाल कर श्रम की उत्पादकता को भी बढ़ाकर अतिरिक्त श्रमकाल को सापेक्षिक रूप से बढ़ाता है। मोदी सरकार द्वारा लाये गये नये लेबर कोड के तमाम मक़सदों में से एक मक़सद यह है कि मज़दूर 12-12 घण्टे बिना किसी कानूनी रोक-टोक के काम करने को मजबूर किये जा सकें। आर्थिक संकट के दौर में मोदी सरकार को अरबों रुपये ख़र्च कर तमाम पूँजीपतियों ने इसीलिए तो सत्ता में पहुँचाया था। अपने पहले कार्यकाल से ही मोदी और उसके पीछे खड़े सारे पूँजीपति तरह-तरह के बयानों से इस बात का माहौल बनाते रहे हैं मज़दूर सप्ताह में सारे दिन 12-12 घण्टे काम करने को "राष्ट्र की प्रगति" के नाम पर स्वीकार कर लें! ख़ुद प्रधानमन्त्री मोदी दिन में 18-18 घण्टे काम करने के बयान देते रहे हैं। इससे पहले इन्फ़ोसिस के नारायण मूर्ति ने हफ्ते में 70 घण्टे काम करवाने की इच्छा जतायी थी और अब लार्सन एण्ड टूब्रो के चेयरमैन ने हमसे हफ्ते में 90 घण्टे काम करवाने की चाहत अभिव्यक्त की है। और मोदी ने इन्हीं इच्छाओं को पूरा करने के लिए "देश के विकास" के नाम पर हमसे सप्ताह में 90-90 घण्टे काम करवाने का इन्तज़ाम लेबर कोड के ज़रिये कर दिया है! जिस दिन देश में मेहनतकशों की सत्ता क़ायम होगी, जिस दिन उत्पादन के समस्त साधनों और ज़मीन पर देश के मेहनतकश वर्गों का साझा मालिकाना होगा, जिस दिन फ़ैसला लेने की ताक़त हमारे हाथों में होगी, उस दिन अपने देश के विकास के लिए हफ्ते में 100 घण्टे काम की ज़रूरत होगी, वह भी इस देश की जनता कर लेगी! लेकिन देश के धन्नासेठों, धनपशुओं और धनपिपासुओं की तिजोरियाँ भरने का "देश के विकास" से क्या लेना-देना है? वास्तव में, इसका "राष्ट्र" या देश के विकास से कोई लेना-देना नहीं है। इसका रिश्ता है मन्दी के बिलबिलाये हुए पूँजीपतियों को मुनाफ़े के संकट से राहत दिलवाने से और इसीलिए मोदी को सत्ता में पहुँचाने का ख़र्चा पूँजीपतियों ने किया था क्योंकि आर्थिक संकट के दौर में एक फ़ासीवादी राज्यसत्ता पूँजीपतियों के लिए इस काम को और भी "सुचारू रूप" से करती है।

लार्सन एण्ड टूब्रो और इंफोसिस जैसी कम्पनियों के चेयरमैन द्वारा कही जाने वाली इस प्रकार की बातें असल में मज़दूर वर्ग की मेहनत को निचोड़ लेने की उनकी इच्छा को ही दर्शाती है। और आज पूँजीपति वर्ग की इस इच्छा को आज मोदी सरकार बहुत सफ़ाई से पूरा कर रही है। श्रम क़ानूनों को हटाकर लेबर कोड को लाने से लेकर उनके मुद्दों को भटकाकर साम्प्रदायिक रंग देने तक का काम अन्ततः पूँजीपति वर्ग के हित में ही जाता है। हमें यह समझ लेना चाहिए कि आपसी गलाकटू प्रतिस्पर्धा के बावजूद मज़दूर वर्ग के ख़िलाफ़ पूँजीपति वर्ग एकजुट हैं, उनकी इस एकजुटता का जवाब मज़दूरों-मेहनतकशों को अपनी बुनियादी माँगों पर अपनी एकजुटता स्थापित कर देना होगा। देश के पूँजीपति हमारे ख़ून के आख़िरी क़तरे को भी निचोड़कर तिजोरियाँ भरने और हमारे आँसुओं के समन्दर में अपनी ऐयाशी की मीनारें खड़ी करने को तैयार हैं। हमें एक इंसानी ज़िन्दगी के अपने हक़ के लिए लड़ने के लिए कमर कसनी होगी। वरना वह समय दूर नहीं जब कारखानों, वर्कशॉपों, ऑफिसों में हमारी ग़ुलामी को देखकर प्राचीन काल के ग़ुलाम भी शर्मिन्दा हो जायेंगे।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016